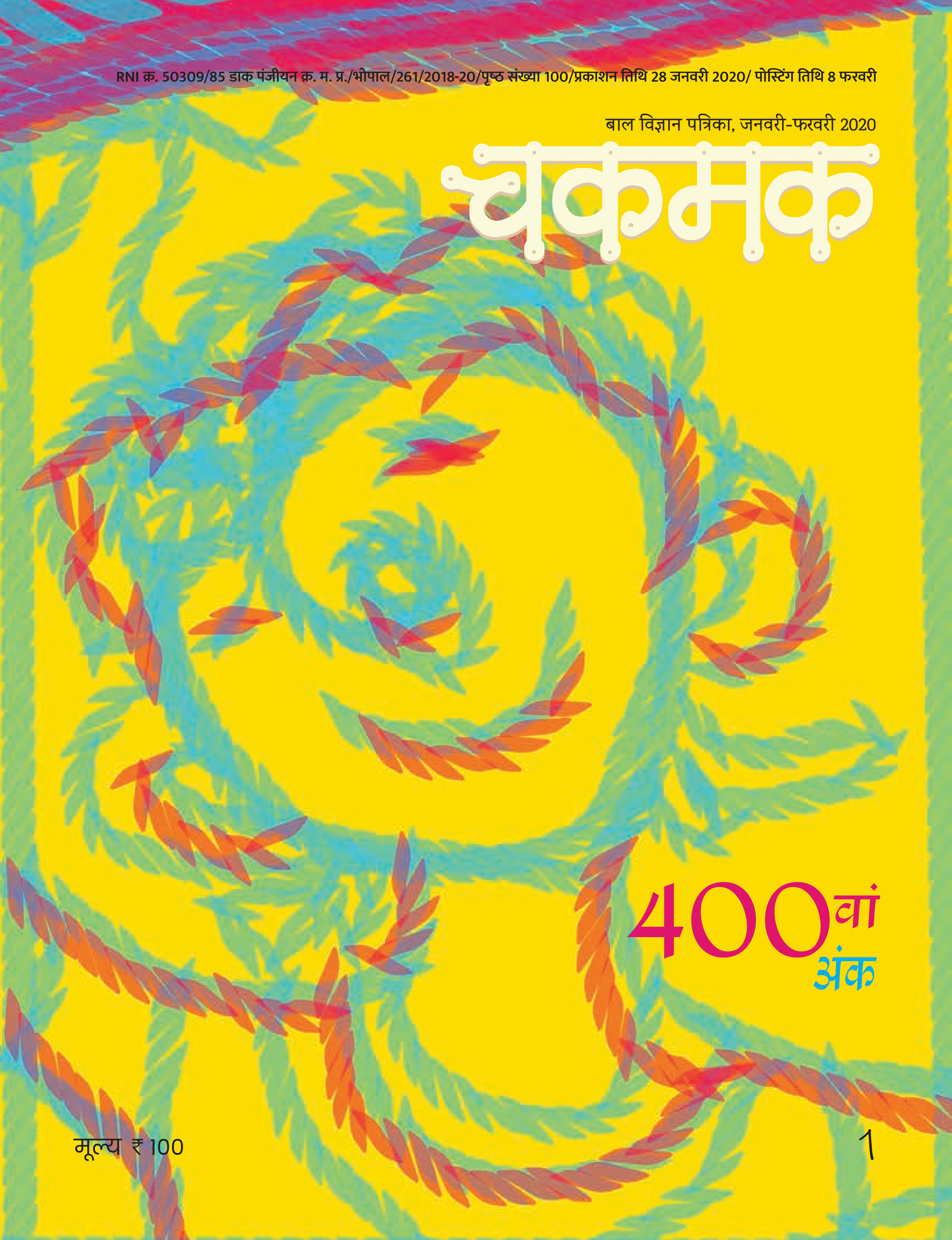
RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म. प्र./भोपाल/261/2018-20/पृष्ठ संख्या 100/प्रकाशन तिथि 28 जनवरी 2020/ पोस्टिंग तिथि 8 फरवरी

बाल विज्ञान पत्रिका, जनवरी-फरवरी 2020

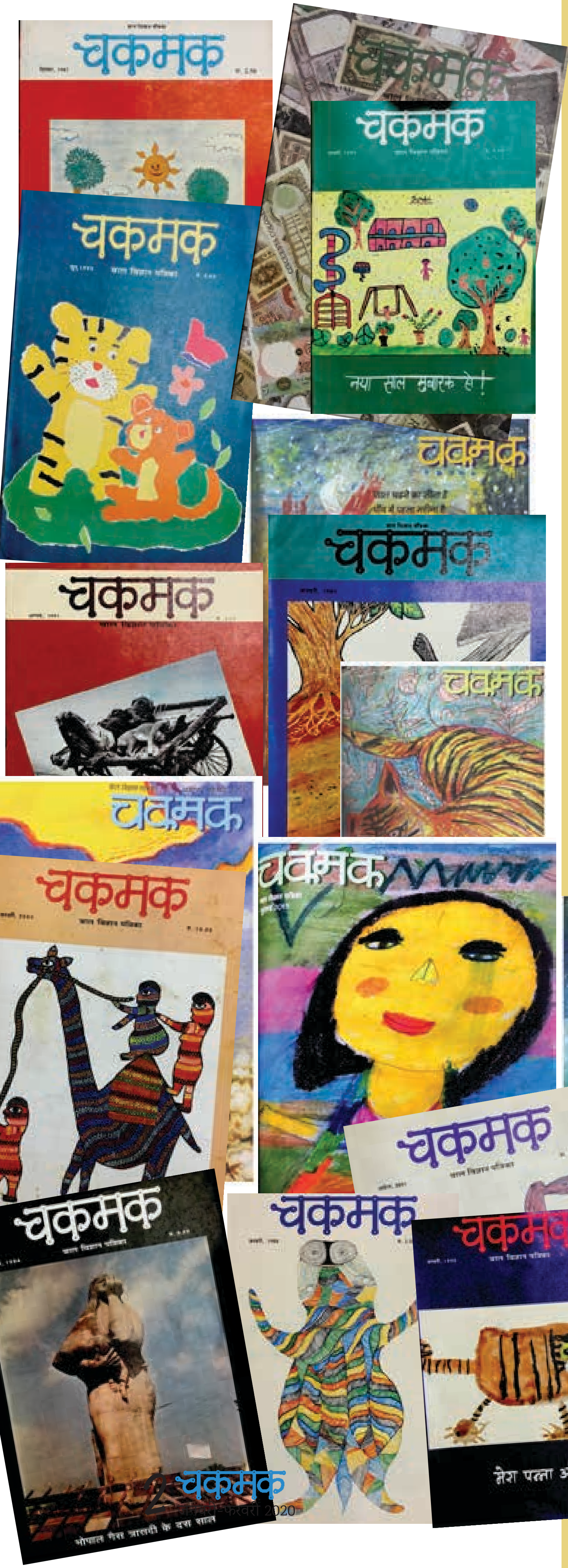
चकमक



400वां अंक

मूल्य ₹ 100

1





चकमक का यह अंक हम
रेक्स डी रोज़ारियो
और विनोद रायना
को समर्पित करते हैं।



चकमक की पहली टीम, अंक जुलाई 1985

संपादन : रेक्स डी रोजारियो, श्याम बोहरे, राजेश उत्साही, निशा व्यास
संपादन सहयोग : आर.के. भटनागर, रश्मि पालीवाल, हृदयकांत, अरविंद गुप्ता, सी.एन. सुब्रह्मण्यम्, अनीता रामपाल
कला/सज्जा : जया विवेक
कला/सज्जा सहयोग : रमेश दुबे, एलीथिया डी. रोजारियो
उत्पाद एवं वितरण : एच.के. बिसवास, कमलसिंह
प्रबंध : विनोद रायना
पत्र व्यवहार का पता : एकलव्य, E-1/208, अरेरा कालोनी, भोपाल—462 016

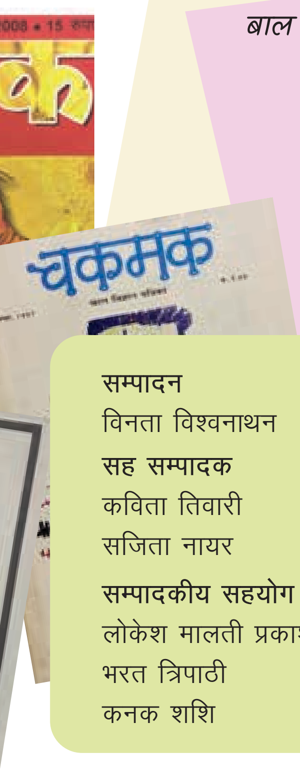


400-401 जनवरी-फरवरी 2020

चकमक

इस बार

सम्पादकीय - विनता विश्वनाथन - 4
चकमक को बधाई - प्रेमपाल शर्मा - 5
ढोंगी लड़ैया - मनोज साहू 'निडर' - 6
मीठा खाने का मस्तिष्क पर प्रभाव - 11
बाघ आया उस रात - नागार्जुन - 12
रेवा - प्रभात - 14
तुम भी बनाओ - हेलीकॉप्टर - 18
तेरा तुझको अर्पण - रोहन चक्रवर्ती - 20
दादी-नानी क्यों होती हैं - सुशील जोशी - 21
एक बौना लिपिक - सी एन सुब्रह्मण्यम् - 24
प्यारे भाई रामसहाय - स्वयं प्रकाश - 26
दर्दनाशक दवाएँ... - प्रनन्दिता बिस्वास -28
चिड़ियों के झुण्ड - वीरेन्द्र दुबे - 31
विशाल घास - नेचर कॉन्ज़र्वेशन फाउण्डेशन - 32
क्यों-क्यों - 34
समानता व बन्धुता के बिना... - झरना साहू - 36
एक बच्ची ने तय किया - रश्मि पालीवाल - 38
बाल अधिकार क्या हैं? - आर पद्मिनी - 42
पृथ्वी का चक्कर - राजेश जोशी - 44
दादा जी का कोट - पवन चौहान - 46
तुम भी जानो - 47
भूलभुलैया - 48
ग्रीनिश वॉर्बलर - रोहन चक्रवर्ती - 49
ये सारा उजाला... - सुशील शुक्ल - 50
म्याऊँ-म्याऊँ - कनक शशि - 52
डायनासौर को भी जूं होती थी - 54
मेरा पन्ना - 55
पानीपूरी - इकरा सिद्दीकी - 59
चाय पीने आया एक नया दोस्त - निधि सक्सेना - 60
खुले में शौच की समस्या - उमा सुधीर - 62
किताबें कुछ कहती हैं...- पुस्तक समीक्षा - 65
सिर का सालन - मोहम्मद खदीरबाबू - 66
मेरी डायरी का एक पन्ना - सजिता नायर - 72
इन्ही गलियों में...- सुशील शुक्ल - 74
आज़ादी - इसके मायने हैं क्या? - अंजलि नरोना - 78
कितनी स्वतंत्रता है बच्चों को - निधि गुलाटी - 80
हम कागज़ नहीं दिखाएँगे - विनता विश्वनाथन - 82
एक सुबह - शशि सबलोक - 86
कितनी दुनिया - लोकेश मालती प्रकाश - 88
तुम भी जानो - 89
माथापच्ची - 90
तुम भी बनाओ - लूप ग्लाइडर - 94
चित्रपहेली - 98



सम्पादन
विनता विश्वनाथन

सह सम्पादक
कविता तिवारी
सजिता नायर

सम्पादकीय सहयोग
लोकेश मालती प्रकाश
भरत त्रिपाठी
कनक शशि

डिज़ाइन
कनक शशि

डिज़ाइन सहयोग
इशिता देबनाथ बिस्वास

सलाहकार
सी एन सुब्रह्मण्यम्
शशि सबलोक

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
कमलेश यादव

आवरण चित्र: कनक शशि

एक प्रति : ₹ 50
वार्षिक : ₹ 500
तीन साल : ₹ 1350
आजीवन : ₹ 6000
सभी डाक खर्च हम देंगे

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चेक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण:
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
एकलव्य फाउण्डेशन, जाटखेड़ी, फॉर्चून कस्तूरी के पास, भोपाल, मध्य प्रदेश 462 026
फोन: +91 755 2977770 से 3 तक email - chakmak@eklavya.in, circulation@eklavya.in
www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

प्रिय दोस्तो,

चकमक का 400वां अंक तुम सब को मुबारक हो!

1980 के दशक में एकलव्य शिक्षकों और बच्चों के साथ स्कूलों में काम कर रहा था। उस समय एकलव्य शिक्षकों के लिए एक बुलेटिन तैयार करता था - होशंगाबाद विज्ञान बुलेटिन। बच्चों के साथ भी संवाद बनाए रखने की इच्छा थी, तो इसी में बच्चों के लिए लेख भी शामिल किए जाने लगे। बड़ी तादाद में बच्चे बुलेटिन खरीदने लगे और चिट्ठियाँ भी भेजने लगे। एक ही पत्रिका के माध्यम से दो अलग वर्ग के पाठकों तक पहुँचना मुश्किल हो रहा था, सो यह तय हुआ कि बच्चों के लिए अलग से पत्रिका बनानी चाहिए। इस तरह जुलाई 1985 में *चकमक* का पहला अंक अस्तित्व में आया।

400वें अंक तक पहुँचते-पहुँचते *चकमक* 34 साल की हो गई है। इस दौरान *चकमक* बनाने वाले भी कई बार बदले हैं और हर टीम ने अपने अन्दाज़ से इसे बनाया है। दो साल पहले जब हमने *चकमक* का ज़िम्मा लिया तो हमने भी सोचा कि कुछ नया करें। यह भी सोचा कि क्यों न बच्चों से ही पूछा जाए कि वे *चकमक* में क्या पढ़ना चाहेंगे। और इस तरह हमने 2018 की नवम्बर माह की *चकमक* बच्चों से बनवाई। उस अंक की तैयारी में डेढ़-एक महीने का समय लगा और उस दौरान हम बच्चों से कई बार मिले। एक बड़े समूह से हमने बच्चों की एक सम्पादकीय टीम का चयन किया। अंक में क्या होगा, क्या नहीं ये उन्होंने ही तय किया। उनकी सारी चर्चाओं को हमने गौर से सुना।

2018 का नवम्बर अंक और उसके बाद से अब तक के अंक *चकमक* के उन अंकों से अलग हैं, जिन्हें हम पहले तैयार करते आ रहे थे। अब लेखों की लम्बाई कम थी, तो पहले से ज़्यादा रचनाएँ शामिल होने लगीं। बच्चों के कहने पर हम ज़्यादा पहेलियाँ, क्राफ्ट आदि गतिविधियाँ देने लगे। दुनिया भर में होने वाली रोचक घटनाओं के बारे में स्निपेट्स देने लगे। जब कभी हमें लगा कि किसी बच्चे की रचना को अलग से प्रस्तुत किया जा सकता है, तो हमने उसे 'मेरा पन्ना' कॉलम से इतर स्वतंत्र रचना की तरह जगह दी।

इस अंक की तैयारी में सबकी बहुत मेहनत लगी। लेकिन खूब मज़ा भी आया। हमने चाहा था कि हर साल कम से कम एक अंक तो बच्चों का कोई समूह तैयार करे। मसला यह है कि हमारे पाठक तो पूरी हिन्दी पट्टी मे फैले हुए हैं। किसी एक शहर में जाकर एक अंक बनवाना काफी मुश्किल काम है। फिर हमने सोचा कि क्यों न हम अपनी टीम में कुछ बाल सम्पादक जोड़ लें। अपने-अपने शहर-गाँव से वे काम कर सकते हैं। तो अगर तुम कुछ समय के लिए *चकमक* का सम्पादन करना चाहो, तो हमें ज़रूर लिखना। साथ ही यह भी लिखना कि तुम्हें यह अंक कैसा लगा। तुम्हारे खत-ईमेल का हमें इन्तज़ार रहेगा।

सस्नेह,

विनता विश्वनाथन

चित्र: चकमक, अंक जनवरी 1987

चकमक को बधाई

प्रेमपाल शर्मा

विश्व पुस्तक मेला अभी 12 जनवरी को खत्म हुआ है। हर बार की तरह इस बार भी मेरी मेज़, मेरे बिस्तर और चारों तरफ किताबें ही किताबें हैं। इनमें से सबसे ज़्यादा, सबसे खूबसूरत और सबसे सस्ती किताबें एकलव्य संस्थान की हैं। *हाना का सूटकेस, कहानी रंजन की, माछेर झोल, मान्या की दहाड़, छुटकी और चीरो,* रिनचिन की *अजूबा और चुड़ैल का नाश्ता*...। इनमें से कुछ फिर-फिर पढ़ने के लिए मेरी निजी अलमारी में चली जाती हैं, तो कुछ आसपास के बच्चों के जन्मदिन की बाट जोहती रहती हैं। कुछ बच्चे पढ़कर वापस दे जाते हैं तो वह मेरे अपने गाँव और उसके आसपास के स्कूलों में चली जाती हैं। आप किसी को चॉकलेट या मिठाई देंगे तो वे खतम हो जाएँगी, किताब देंगे तो वह जीवन भर साथ रहेगी। वे सब आपको याद रखेंगे। यूँ मेरा घर तो मानो एकलव्य का ही विस्तार है... *जश्न-ए-तालीम, विज्ञान की शिक्षा, समरहिल*... केवल मेरा घर ही नहीं, बुलन्दशहर ज़िले का मेरा गाँव और उसके आसपास के सभी स्कूल भी। लेकिन इन सब किताबों तक पहुँचने की शुरुआत हुई *चकमक* पत्रिका से ही। यदि ठीक-ठीक याद करूँ तो *चकमक* के जन्म के बिलकुल शुरू से ही।

सन 1990 से एक-दो साल पहले की बात है। मण्डी हाउस में श्री राम सेंटर में मैंने यह पत्रिका देखी थी। मेरे बेटे की उम्र तब पाँच-छह साल थी। मुझे लगा मानो मेरे बच्चों के लिए ही यह पत्रिका शुरू हुई है। नन्हे-मुन्ने बच्चों के हाथ से लिखी चिट्ठियाँ, वो भी उनके क्षेत्र की बोली-भाषा में। उनके नाना-नानी, दादा-दादी, चिड़िया, हाथी, नदी, खेत, चींटी, कुत्ता, सियार यानी जो कुछ भी उनके आसपास था, उन सबके बहुत खूबसूरत अनुभव इसमें शामिल थे। दुनिया बदलने के लिए पहली शर्त है - बच्चों को बदलना, उन्हें समझना। और *चकमक* आज तक इस पर कायम है। लगभग 30 साल से ज़्यादा लम्बी यात्रा में इसका रूप वक्त के हिसाब से बदला ज़रूर है, लेकिन इसके सरोकार अब भी वही हैं। और इसका श्रेय जाता है इस संस्थान के उस विज़न को, जो समाज में अपेक्षित बदलाव के लिए एक-एक शब्द और चित्र की अहमियत समझता है।

सच कहूँ तो *चकमक* और इन किताबों के सहारे ही मैं खुर्जा, बुलन्दशहर के बच्चों और शिक्षकों तक पहुँचने में थोड़ा बहुत सफल रहा हूँ। यदि यह सब मेरे पास नहीं होतीं तो न मेरा शिक्षा में कोई झुकाव होता और न ही मैं शिक्षा में बदलाव के बारे में सोच पाता। मैंने अभी से बेंगलुरु में रह रहे अपने 5 महीने के नाती के लिए *चकमक* की इन सभी किताबों का बस्ता बाँध लिया है। *चकमक* के 200वें अंक में मेरे छोटे बेटे अचिंत्य ने लिखा था। यानी पीढ़ी दर पीढ़ी का भरोसा।

पुस्तकों से दूर होते समाज में *चकमक* जैसी पत्रिकाओं को लगातार जारी रखना आसान नहीं है। इसलिए उन सभी दानवीर और शुभचिन्तकों के प्रति आभार प्रकट करना ज़रूरी है, जो ऐसे कठिन दौर में *चकमक* के साथ बने रहे हैं। एक ऐसे दौर में जब हिन्दी के पुरस्कृत लेकिन जनता, जड़ से कटे दिल्ली में बैठे साहित्यकार हिन्दी और भारतीय भाषाओं की मौत की रोज़-रोज़ घोषणा कर रहे हों, मुझे खुशी है कि *चकमक* 400वें अंक तक पहुँच गई है। और पक्का यकीन है कि यह 4000वें अंक और उससे भी लम्बी यात्रा पूरी करेगी। जब तक बच्चे हैं, *चकमक* भी ज़िन्दा रहेगी।

एकलव्य परिवार सहित *चकमक* की पूरी टीम को बधाई! शुभकामनाएँ!

बुन्देलखण्डी लोककथा

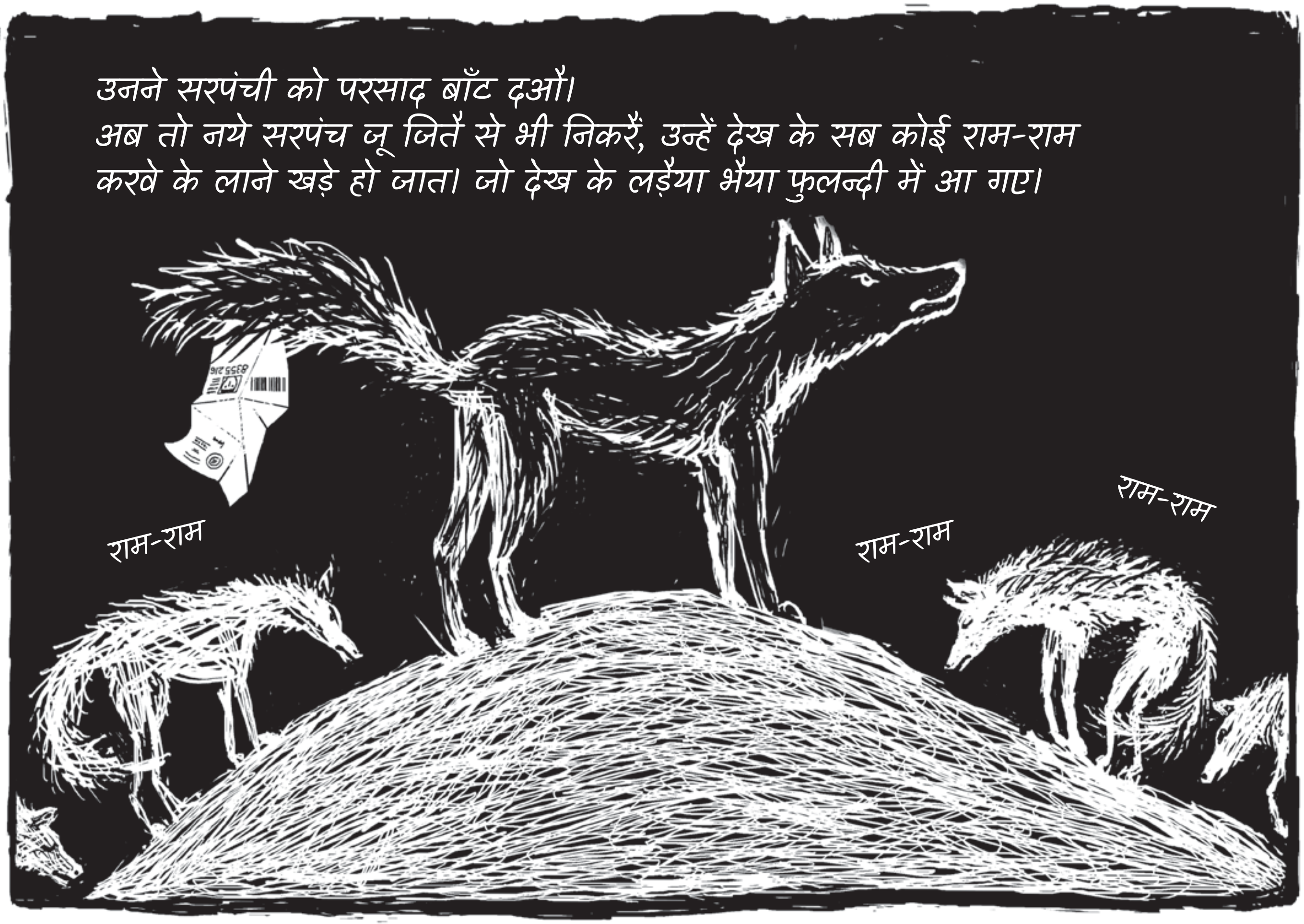
ढोंगी लड़ैया

प्रस्तुति: मनोज साहू 'निडर'
चित्र: कैरन हेडॉक



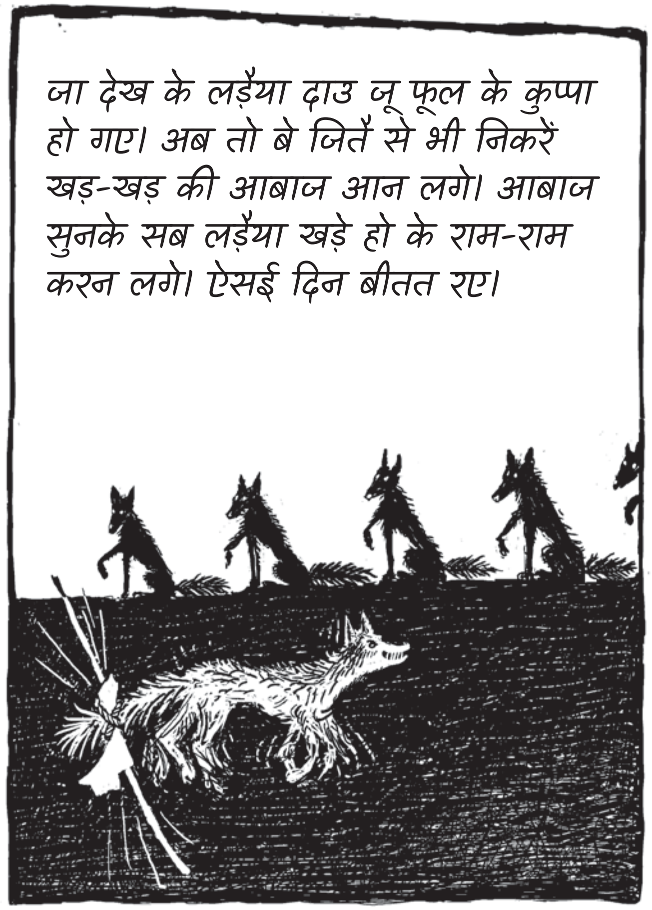


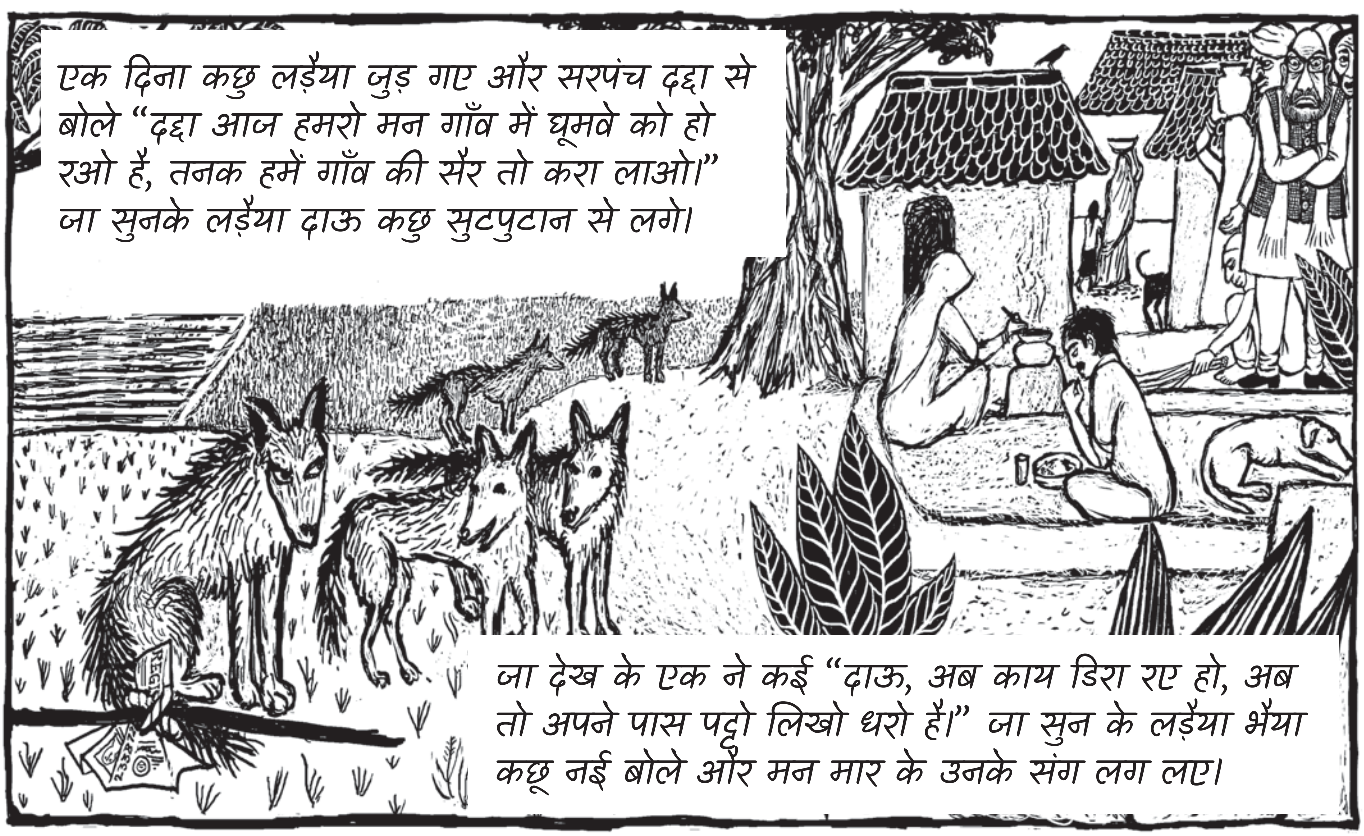


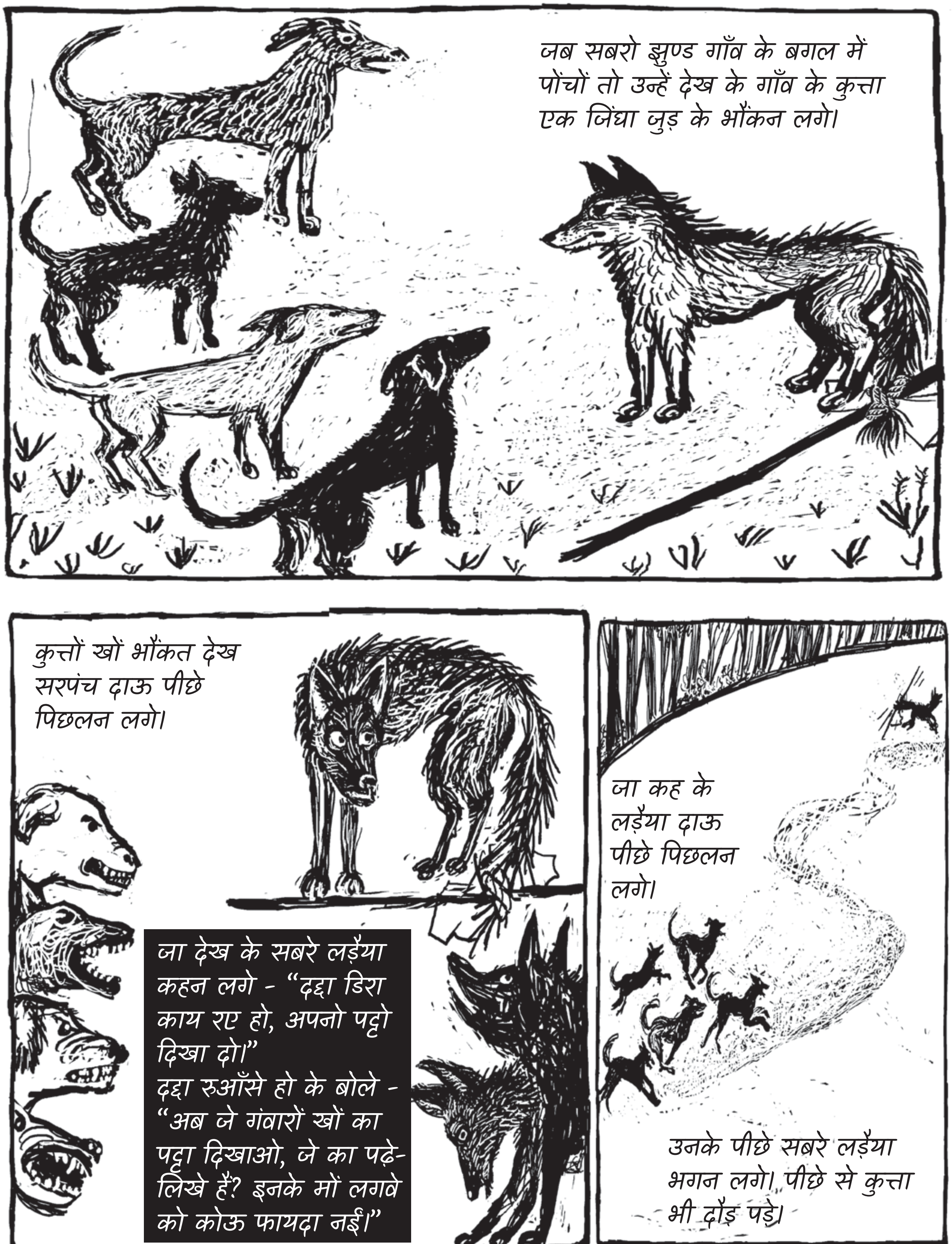

उनने सरपंची को परसाद बाँट दओ।
अब तो नये सरपंच जू जितै से भी निकरैं, उन्हें देख के सब कोई राम-राम करवे के लाने खड़े हो जात। जो देख के लड़ैया भैया फुलन्दी में आ गए।
राम-राम
राम-राम
राम-राम


एक लड़ैया बोलो - “सरपंच जू तुम में और हममें कोई फरक नई है, सो कछु ऐसों उपाय करो के तुमाई अलग पहचान हो जावे और हम दूर सेई चीन्ह लेवें के सरपंच जू चले आ रए हैं।” जा बात सरपंच जू हे जम गई।


फिर सब पंचों ने विचार करके एक तीन-चार हाथ को डण्डा सरपंच जू की पूँछ से बाँध दओ।


जा देख के लड़ैया दाउ जू फूल के कुप्पा हो गए। अब तो बे जितै से भी निकरें खड़-खड़ की आबाज आन लगे। आबाज सुनके सब लड़ैया खड़े हो के राम-राम करन लगे। ऐसई दिन बीतत रए।


एक दिना कछु लड़ैया जुड़ गए और सरपंच दद्दा से बोले "दद्दा आज हमरो मन गाँव में घूमवे को हो रओ है, तनक हमें गाँव की सैर तो करा लाओ।" जा सुनके लड़ैया दाऊ कछु सुटपुटान से लगे।
जा देख के एक ने कई "दाऊ, अब काय डिरा रए हो, अब तो अपने पास पट्टो लिखो धरो है।" जा सुन के लड़ैया भैया कछू नई बोले और मन मार के उनके संग लग लए।


जब सबरो झुण्ड गाँव के बगल में पोंचों तो उन्हें देख के गाँव के कुत्ता एक जिंघा जुड़ के भौंकन लगे।
कुत्तों खों भौंकत देख सरपंच दाऊ पीछे पिछलन लगे।
जा देख के सबरे लड़ैया कहन लगे - "दद्दा डिरा काय रए हो, अपनो पट्टो दिखा दो।"
दद्दा रुआँसे हो के बोले - "अब जे गंवारों खों का पट्टा दिखाओ, जे का पढ़े-लिखे हैं? इनके मों लगवे को कोऊ फायदा नईं।"
जा कह के लड़ैया दाऊ पीछे पिछलन लगे।
उनके पीछे सबरे लड़ैया भगन लगे। पीछे से कुत्ता भी दौड़ पड़े।


सबरे लड़ैया दौड़ के मांद में भरा गए, मनो सरपंच जू कछु पीछे रह गए। उनकी पूँछ से बँधो डण्डा अड़ गओ, उनने खूब दम लगाई मनो वे भीतर नई भरा पाए।
जा देख के एक लड़ैया बोलो, “सरपंच जू उतै का कर रए हो जल्दी से भीतरे भरा जाओ।” सरपंच जू बोले - “मैं का करूँ भैया मेरी सरपंची तो बाहर अटक रई है।”
लड़ैया दाऊ भईं कसमसात रह गए। इत्ते में कुत्तों को झुण्ड आ गओ और लपक के सरपंच दद्दा की टाँग पकर लई।
फिर तो सब ने मिल के चीथ खाओ। बाकी सबरे लड़ैया डिरा के भंई चिमा गए।
किस्सा हती खतम।



मीठा खाने का मस्तिष्क पर प्रभाव

मीठा खाना हम सबको पसन्द है। मीठा खाने से खुद को रोक पाना इतना कठिन होता है कि मानो मस्तिष्क को मीठा खाने के लिए प्रोग्राम किया गया हो।

मीठे का सेवन करने पर हमारे मस्तिष्क की डोपामाइन प्रणाली सक्रिय हो जाती है। डोपामाइन को मस्तिष्क एक सकारात्मक संकेत के रूप में दर्ज करता है। यह रसायन उसी कार्य को फिर से करने के लिए प्रेरित करता है और हमारा आकर्षण मिठास के प्रति बढ़ जाता है।

मीठी चीज़ों की मिठास के लिए ज़िम्मेदार 'ग्लूकोज़' मस्तिष्क की कोशिकाओं सहित अन्य कोशिकाओं के लिए ईंधन का काम करता है। अधिक चीनी के सेवन से वज़न बढ़ने, मोटापे, टाइप-2 मधुमेह और दन्त रोग जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लेकिन क्या चीनी का अत्याधिक सेवन मस्तिष्क पर कोई नकारात्मक प्रभाव डालता है?

भूख के अलावा कई लोगों में खाने की लालसा तनाव के कारण या भोजन के आकर्षक चित्र देखकर भी पैदा होती है। इस लालसा को रोकने के लिए हमें अपनी स्वाभाविक प्रतिक्रिया को नियंत्रित करना होता है। इसमें निषेध न्यूरॉन्स की प्रमुख भूमिका होती है। ये न्यूरॉन्स मस्तिष्क में ब्रेक की तरह काम करते हैं। चूहों में अध्ययन से पता चला है कि उच्च चीनी युक्त आहार लेने से निषेध न्यूरॉन्स में बदलाव आ सकता है। ऐसे चूहे अपने व्यवहार को नियंत्रित करने में और निर्णय लेने में कम सक्षम पाए गए। इससे लगता है कि हम जो भी खाते हैं, वो इन प्रलोभनों का विरोध करने की हमारी क्षमता को प्रभावित कर सकता है। और आहार में बदलाव करना मुश्किल हो सकता है।

हाल में हुए एक अन्य अध्ययन से मालूम चला है कि जो लोग नियमित रूप से उच्च वसा, उच्च चीनी वाले आहार खाते हैं, वे भूख न लगने पर भी खाने की लालसा महसूस करते हैं। यानी नियमित रूप से उच्च चीनी युक्त खाद्य पदार्थ खाने से लालसा बढ़ती जाती है।

उच्च मात्रा में चीनी युक्त आहार लेने वाले चूहों में याददाश्त की समस्या भी उत्पन्न हुई। चीनी के कारण मस्तिष्क के कुछ हिस्सों में नए न्यूरॉन्स की कमी पाई गई। यह न्यूरॉन्स याददाश्त बढ़ाने और उत्तेजना से जुड़े रसायनों में वृद्धि करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

अब सवाल यह है कि अपने मस्तिष्क को चीनी से कैसे बचाएँ? विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार हमें अपने दैनिक कैलोरी सेवन की मात्रा में शक्कर का सेवन केवल 5 प्रतिशत तक सीमित करना चाहिए। यह लगभग 25 ग्राम (छह चम्मच) के बराबर है। इस हिसाब से तो आहार में काफी बदलाव की ज़रूरत है।

स्रोत फीचर्स से साभार





चित्र: अनाम, आनन्द निकेतन स्कूल, सेवाग्राम, वर्धा, महाराष्ट्र

बाघ आया उस रात

नागार्जुन

“वो इधर से निकला
उधर चला गया”
वो आँखें फैलाकर
बतला रहा था-
“हाँ बाबा, बाघ आया उस रात,
आप रात को बाहर न निकलो!
जाने कब बाघ फिर से बाहर निकल जाए!”
“हाँ वो ही, वो ही जो
उस झरने के पास रहता है
वहाँ अपन दिन के वक्त
गए थे न एक रोज़?
बाघ उधर ही तो रहता है
बाबा, उसके दो बच्चे हैं
बाघिन सारा दिन पहरा देती है
बाघ या तो सोता है
या बच्चों से खेलता है...”
दूसरा बालक बोला-
“बाघ कहीं काम नहीं करता
न किसी दफ्तर में
न कॉलेज में”
छोटू बोला-
“स्कूल में भी नहीं...”
पाँच-साला बेटू ने
हमें फिर से आगाह किया
“अब रात को बाहर होकर बाथरूम न जाना”





रेवा

प्रभात
चित्र: नीलेश गहलोत

रेवा छठवीं में पढ़ती थी और पलाश आठवीं में। एक रोज़ रेवा हिन्दी की किताब लेकर पलाश के पास आई। बोली, "पलाश, क्या तुम इसका मतलब बता सकते हो?"

"हाँ, बोलो ना?" पलाश ने कहा।

रेवा ने 'सूरदास' पाठ का 'बूझत श्याम कौन तू गौरी' पद खोलकर सामने रखा।

"ये तो बड़ा आसान है।"

"तो बताओ।"

"तुम कौन हो?"

"रेवा, और कौन?"

"कहाँ रहती हो?"

"तुम्हारे पड़ोस में।"

"किसकी बेटी हो?"

"मम्मा की।"

"पापा की नहीं हो?"

"नहीं।"

"तुम्हें पहले तो कभी नहीं देखा?"

"रोज़ तो देखते हो।"

"कहाँ खेलती रहती हो?"

"इससे तुम्हें क्या? तुम्हें नहीं आता तो छोड़ो, मैं अपनी कक्षा में तराजू सिंह से पूछ लूँगी।"

"अरे! नहीं, नहीं। तुम कहो तो मैं तुम्हारी कॉपी में पूरा होमवर्क कर देता हूँ। पर किसी तराजू सिंह से पूछने की ज़रूरत नहीं है।"

"तो फिर बताओ?"

"मैंने बता दिया रेवा। यही इस पाठ का मतलब है।"

रेवा ने पूरा पद फिर से पढ़कर देखा और मुस्कराने लगी। "हाँ, ऐसी ही बातचीत है पद में।" फिर आँखें पलाश के चेहरे पर गड़ाकर बोली, "तुम्हें किसने समझाया?"

“मेरे चाचा ने और किसने। वे दफ्तर से आने के बाद किताबें ही पढ़ते रहते हैं।”

“ओह!” फिर बोली, “पता है, हमारे लालिता प्रसाद चतुर्वेदी सर इसे कैसे पढ़ा रहे थे?”

“कैसे?”

“वे हमेशा ऐसे शुरू करते हैं, ‘बालको!’ (जैसे किसी टायर कम्पनी का नाम ले रहे हों और जैसे बालिकाएँ क्लास में पढ़ती ही न हों।) फिर कहते हैं- बालको! भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास भगवान श्रीकृष्ण के अनन्योपासक थे। बाल्यकाल से ही दत्तचित्त होकर कृष्णा स्तुति में प्रवृत्त रहा करते थे....।”

“अरे! अरे! अरे! तुम्हें यह सब याद कैसे हुआ।”

“हमारी क्लास के सभी बच्चों को यह याद है, क्योंकि सर के जाने के बाद पूरी क्लास उनके वाक्यों को बोल-बोलकर हँस-हँसकर लोटपोट होती रहती है। खैर छोड़ो, तुम हमारे स्कूल में क्यों नहीं आ जाते पलाश?”

“मुझे विद्या के किसी मन्दिर में नहीं पढ़ना। सरकारी स्कूल में ही पढ़ना है, जहाँ सब पढ़ सकते हों। तुम्हारे स्कूल में कोई मुसलमान बच्चा पढ़ता है?”

रेवा ने कुछ पल सोचा और बोली, “नहीं।”

“तब बताओ ऐसे विद्या मन्दिर में क्यों पढ़ा जाए, जहाँ हर कोई न पढ़ सकता हो। ऐसा मेरे चाचा कहते हैं।”

“रेऽवाऽऽ!” बुलाने की आवाज़ आई।

“आई मम्मा।” कहते हुए रेवा अपनी किताब को बन्द कर भाग गई।

पलाश को भागती हुई रेवा के उछलते सुनहरे बाल बड़े अच्छे लगे।

पूनम टॉकीज कॉलोनी के इस मकान में दो किरायेदार परिवारों सहित कुल तीन परिवार रहते थे। एक हिस्से में मकान-मालिक और उनकी पत्नी, दूसरे हिस्से में रेवा के मम्मी-पापा और दो छोटे भाई। तीसरे हिस्से में पलाश के चाचा और पलाश।

रेवा के पापा का हर दिन एक निश्चित कार्यक्रम रहता था। सुबह अखबार पढ़ने के बहाने पलाश के चाचा के पास कमरे में घुस जाते। उनके कमरे में आते ही पलाश के चाचा एकदम खुश हो जाते। रेवा के पापा प्रवीण कुमार का जीवन में एक ही सपना था - राजनीति में जाना। वे कमरे में आकर रोज़ाना राजनेताओं की तरह भाषण देने का अभ्यास करते। पलाश के चाचा उनकी एकमात्र जनता होते और खुशी-खुशी उनका भाषण सुनते। प्रवीण कुमार मेज़ के उस तरफ खड़े होकर भाषण शुरू करते, ऐसा मानकर कि सामने भारी तादाद में लोग इकट्ठा हुए हैं। वे हालाँकि लुंगी और बुशर्ट में होते लेकिन तीस सैकण्ड मौन रहकर यह सोच लेते कि एक भीड़, पार्टी और उनके नाम के ज़िन्दाबाद के नारे लगा रही है। वे फूलमालाओं से लदे हुए मंच तक चलकर आए हैं और कब से इन्तज़ार कर रही जनता जनार्दन को सम्बोधित कर रहे हैं। वे शुरू करते-

‘मंच पर विराजमान माननीय मंत्री महोदय, प्रधान साहब, भूतपूर्व एमएलए मुरारी जी, पार्टी के कार्यकर्ताओ, देवियो और सज्जनो! हमारी पार्टी शिक्षा के मुद्दे को सबसे ऊपर रखेगी। एक हम ही हैं जो इस देश में समान शिक्षा की बात कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि किसी मंत्री के बच्चे जिस तरह के स्कूल में पढ़ते हैं, मज़दूर और किसान के बच्चे भी उसी स्कूल में पढ़ सकें। यही एक रास्ता है देश में समानता लाने का। सबको बराबरी का अवसर देने का...।’

पलाश के चाचा तालियाँ बजाते और बोलते, “भारत माता की...!”

‘जय।’ की ध्वनि से कमरा गूँज जाता। प्रवीण कुमार गर्व से भर उठते और उनका चेहरा लाल सुर्ख हो जाता। उन्हें लगता अब वे यहाँ से संसद नहीं तो विधानसभा में ज़रूर जा रहे हैं।

"आज की सभा यहीं समाप्त करते हैं।" कहते हुए नौ बजते-बजते वे अपने दफ्तर के लिए निकल जाते। पलाश के चाचा भी फटाफट तैयार होकर अपने दफ्तर चले जाते।

पलाश के चाचा शाम में सब्ज़ी लेकर टहलते हुए छह-सात बजे तक घर लौट आते। धीरे-धीरे संवलाती हुई शाम, अपने रंग को गहराते हुए रात में बदलने लगती। और रेवा की मम्मी का चेहरा स्याह पड़ने लगता। उनके साथ उनके तीनों बच्चे भी उदास हो जाते और कमरे में सिमट जाते। साढ़े आठ बजे तीनों बच्चे खाना खा लेते। दोनों छोटे भाई सो जाते। सूनी दीवार की तरफ झाँकती रेवा अधनींद में रहती।

रात के लगभग बारह-एक बजे प्रवीण कुमार जुआ खेलकर लौटते। उनके आते ही कमरे से धीमी आवाज़ में तीखी नोंक-झोंक की आवाज़ें आतीं। और अन्त में रेवा की मम्मी के रोने की। इससे रेवा की आँखें खुल जातीं। चादर में दुबकी रेवा मन ही मन कहती, "ये मेरे पापा नहीं हैं।"

सवेरा होने पर जैसे ही रेवा की मम्मी कमरे से निकलती, मकान-मालकिन उनको देखकर कहती, "श्रीराम दया के सागर हैं।"

मकान-मालकिन का ये वाक्य सुनकर रेवा की मम्मी अन्दर ही अन्दर झुलसकर रह जाती। रेवा के पापा भी सुनते और शर्मिन्दगी से भरकर अपने बाल नोंचते। उन्हें अपने रात के व्यवहार पर बहुत शर्मिन्दगी होती। वे कसम खाते कि अब कभी जुआ नहीं खेलेंगे। ऐसी कसमें वे रोज़ खाते और रोज़ लुटकर आते। लेकिन हर सुबह उनका व्यवहार एक निहायत शरीफ और बुद्धिमान व्यक्ति के जैसा होता था। सुबह वे पत्नी और बच्चों से भी इतने प्यार से पेश आते थे कि पत्नी मन ही मन कहती, ये जुआ न खेलें तो मेरे पति जैसा नेक इन्सान पूरी कॉलोनी में नहीं है। बच्चे भी यही सोचते, हमारे जैसे अच्छे पापा किसी के नहीं हैं। रेवा भी 'मेरे अच्छे पापा, मेरे अच्छे पापा' कहते हुए उनके गले से झूम जाती। पलाश के चाचा को उनका साथ इतना अच्छा लगता था कि वे सुबह-सुबह इन्तज़ार करते कब प्रवीण कुमार उनके कमरे में आएँ और भाषण दें।

पलाश के चाचा भाषण नहीं देते थे लेकिन उन्हें जीने की कला आती थी। इससे मिलने वाला सुकून पलाश के चेहरे पर दिखाई देता था। रेवा के पापा गम्भीर मुद्दों पर भाषण देते थे लेकिन उन्हें जीने की कला नहीं आती थी। उनके व्यवहार से पैदा होने वाली उदास छाया रेवा के चेहरे पर दिखाई देती थी। लेकिन जब भी वे दोनों मिलते, पलाश के जीवन की कुछ खुशी रेवा के चेहरे पर चली जाती। और रेवा की उदासी की कुछ छाया पलाश के चेहरे पर आ जाती। वे दोनों एक-दूसरे का चेहरा पढ़ते, लेकिन इस पढ़ाई की कभी कोई बात नहीं करते। वे कुछ और ही बात करते। रेवा कहती, "पलाश तुम्हारा नाम ना, प्लास होना चाहिए क्योंकि पलाश के फूल तो कितने सुन्दर होते हैं। और तुम, अपनी शकल तो देखो कभी आईने में।"

"आओ, देखते हैं।" पलाश कहता और झट आईना उठाकर हाथ में ले लेता। फिर दोनों सर जोड़कर आईने में देखते। आईने में पलाश रेवा को देखता और रेवा पलाश को।

फिर वे उन किताबों को पढ़ने लगते, जो पलाश एक पान की दुकान वाले से लाया करता था। पान की दुकान वाले के पास पचास किताबें थीं। वह इन्हें बच्चों को किराये पर पढ़ने के लिए देता था। एक दिन एक किताब पढ़ते-पढ़ते रेवा की आँखें आँसुओं से इतना भर गईं कि आँसू दिखने और गिरने लगे।

"क्या हुआ, रेवा।" पलाश ने कहा और अपनी कोमल हथेली से रेवा के आँसू पौंछ दिए। इस क्षण में उन दोनों को जैसा महसूस हुआ, वैसा इस संसार में कभी-कभी ही किसी को महसूस होता है।

रेवा के पास दो जोड़ी कपड़े थे, जो घिसकर फीके हो गए थे। उनके रंग उड़ गए थे। घर में किसी दिन सब्ज़ी बनती, किसी दिन नहीं। मकान-मालकिन कमरा खाली करने के लिए कई बार कह चुकी थी। कहती

थी, “छह महीने का किराया चढ़ गया है। वह मत दो, क्योंकि तुम लोग दे नहीं सकते। लेकिन कमरा खाली करके तो कहीं जा सकते हो।” रेवा की मम्मी कहती, “कमरा ढूँढ रहे हैं, भाभीजी। जैसे ही मिल जाएगा, खाली कर देंगे।”

आखिर एक दिन प्रवीण कुमार ने मकान बदल लिया। पूनम टॉकीज कॉलोनी में ही एक मकान था। उसका नाम ही था ‘श्रीराम दया के सागर हैं’। उसके गैराज में वे लोग रहने लगे थे। यह एक नेता का मकान था।

रेवा की मम्मी ‘श्रीराम दया के सागर हैं’ मकान में ही मकान-मालिक के झाड़ू-पौंछे का काम करती थी। आसपास और दो-तीन घरों में जाने लगी थी। इससे घर-खर्च चल जाता था। तीनों बच्चों को विद्या मन्दिर से हटाकर सरकारी स्कूल में डाल दिया गया था।

पलाश ने अपने स्कूल का रास्ता बदल लिया। वह रोज़ साइकिल से ‘श्रीराम दया के सागर हैं’ मकान के आगे से होकर गुज़रता। रेवा उसे देखती और खुद को छिपा लेती। पलाश उसे कहीं भी न पाकर उदास हो जाता।

एक रोज़ पलाश बिना बात ही घास मण्डी में भटक रहा था। उसे रेवा जैसी एक लड़की दिखाई दी। उसे लगा कि उसके देखने में गड़बड़ हुई। बेहद घिसे-पुराने कपड़ों में एक लड़की घास का गट्ठर सिर पर रखे खड़ी थी। पलाश ने साइकिल उधर ही घुमा दी। पास जाने पर उसे विश्वास हो गया कि रेवा ही है। “रेवा!” उसने कहा।

रेवा ने गट्ठर उतारकर नीचे रख दिया। फिर वे घास मण्डी की दीवार पर बैठकर खूब बतियाए। पलाश सुन रहा था, रेवा



कह रही थी, “मैं रात को सोने के समय मकान-मालिक के हाथ-पाँव और सिर दबाती हूँ। मालिक कहते हैं, बालों में उँगलियाँ चलाती रहो। मालकिन कहती है, जब तक साहब को नींद न आ जाए, सिर दबाती रहो। और उनके बाद मेरा सिर सहलाना। तुम्हारे हाथ छोटे और कोमल हैं, मुझे अच्छी नींद आ जाती है...।”

एक रात मकान-मालिक मेरा हाथ पकड़कर बोले, “ज़रा, तेल गरम कर लाओ। छाती में गरम तेल से मालिश कर दो।”

मैं बोली, “मैं नहीं जानती।”

मालकिन कहने लगी, “करोगी, तो सीखोगी ना।”

मैंने कहा, “मुझसे नहीं होगा।”

मालकिन बोली, “क्यों नहीं होगा? मैं बताती हूँ। देख, ऐसे करना है।”

“मैं बहुत डर गई थी, मेरे हाथ-पैर काँप रहे थे। लेकिन वहाँ से भाग जाने के सभी दरवाज़े बन्द थे। बाहर उनका कुत्ता बँधा था। रोज़ अब यही काम करती हूँ! इससे पापा को मकान का किराया नहीं देना पड़ता।”

कहते-कहते रेवा चुप हो गई, सुनते-सुनते पलाश कहीं खो गया। रेवा को लगा, अगर वह और यहाँ रुकेगी तो उसे रुलाई आ जाएगी और अब वह आँसुओं भरा रोना, नहीं रोना चाहती थी। वह घास का गट्ठर उठाकर चली गई।

अब घास मण्डी की दीवार पर पलाश अकेला ही बैठा था। वह अभी भी रेवा को सुन रहा था। एकाएक उसने हाथ बढ़ाया जैसे वह रेवा के आँसू पौंछ रहा है। लेकिन रेवा तो वहाँ नहीं थी। उसके हाथ खाली जगह में लहराकर रह गए।



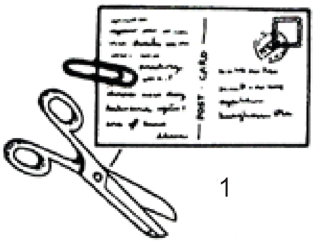
तुम भी बनाओ



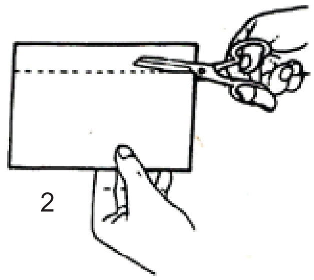
हेलीकॉप्टर

इस हेलीकॉप्टर को बनाने और उड़ाने में तुम्हें बहुत मज़ा आएगा। हवा में नीचे आते हुए यह सचमुच के हेलीकॉप्टर जैसे घूमेगा।

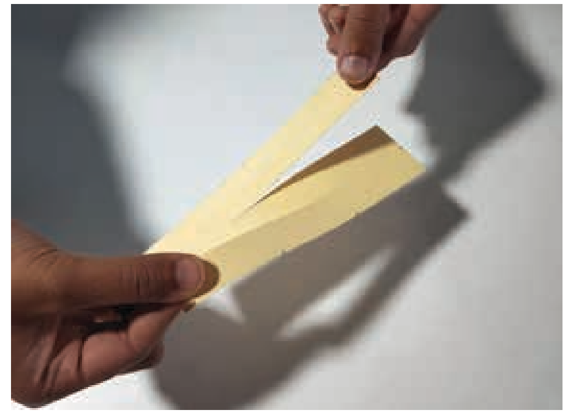
इसे बनाने के लिए एक पुराने पोस्टकार्ड, कैंची और एक पेपर-क्लिप की ज़रूरत होगी (चित्र 1)। पोस्टकार्ड की लगभग 3 सेंटीमीटर चौड़ी एक लम्बी पट्टी काटो (चित्र 2)। अब पट्टी को चित्र 3 में दिखाए तरीके अनुसार काटो। इस बात का ध्यान रखना कि दोनों बार केवल दो-तिहाई दूरी तक ही काटना है। अब ऊपरी दाएँ कोने और निचले बाएँ कोने को दोनों हाथों से पकड़कर चित्र 4 की तरह आपस में मिलाओ।

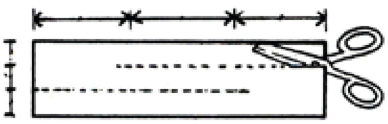


1

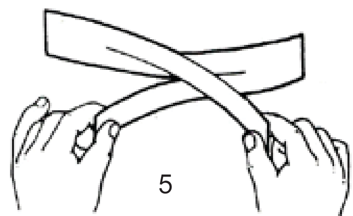


2

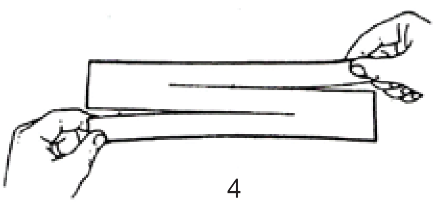




3

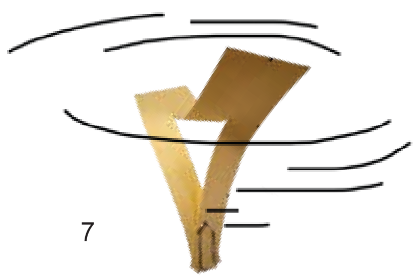


5

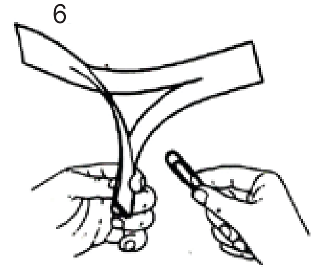


4

6

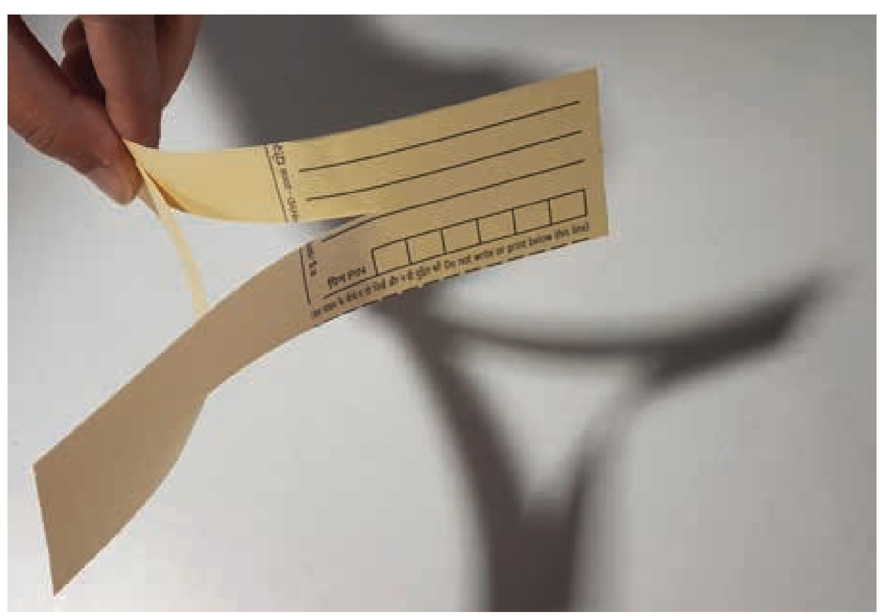


7



6

कागज़ के इन दोनों सिरों पर पेपर-क्लिप चढ़ा दो (चित्र 5)। पेपर-क्लिप के भार की वजह से उड़ान के दौरान हेलीकॉप्टर सीधी स्थिति में रहेगा (चित्र 6)। अब हेलीकॉप्टर को ऊँचाई से छोड़ो और उसे गोल-गोल घूमते हुए नीचे आते देखो (चित्र 7)। अपने हाथ के अँगूठे और उँगली से एक छल्ला बनाओ। गिरते हेलीकॉप्टर को इस छल्ले में पकड़ने की कोशिश करो।



तेरा तुझको अर्पण

रोहन चक्रवर्ती

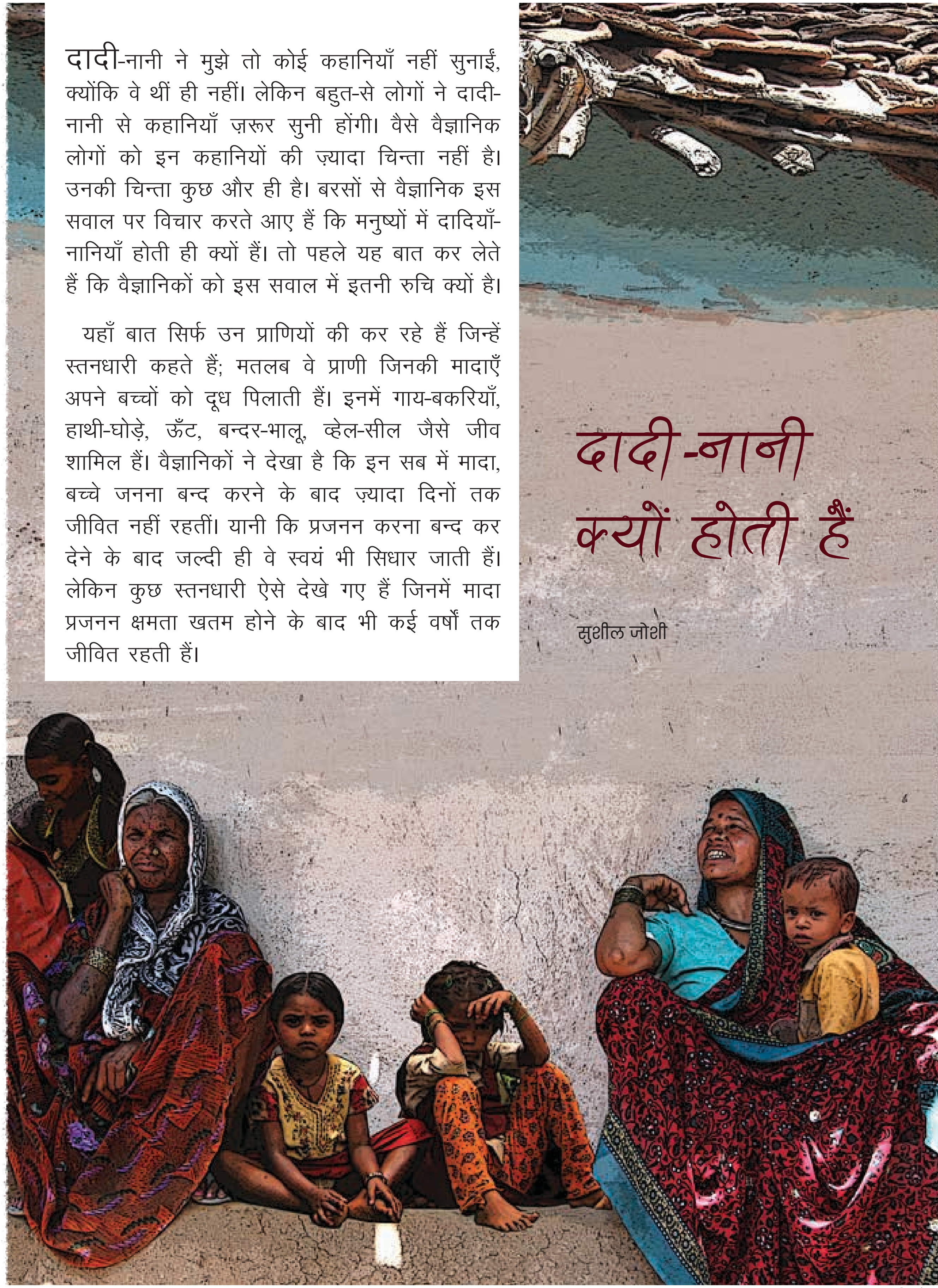


दादी-नानी क्यों होती हैं

सुशील जोशी

दादी-नानी ने मुझे तो कोई कहानियाँ नहीं सुनाईं, क्योंकि वे थीं ही नहीं। लेकिन बहुत-से लोगों ने दादी-नानी से कहानियाँ ज़रूर सुनी होंगी। वैसे वैज्ञानिक लोगों को इन कहानियों की ज़्यादा चिन्ता नहीं है। उनकी चिन्ता कुछ और ही है। बरसों से वैज्ञानिक इस सवाल पर विचार करते आए हैं कि मनुष्यों में दादियाँ-नानियाँ होती ही क्यों हैं। तो पहले यह बात कर लेते हैं कि वैज्ञानिकों को इस सवाल में इतनी रुचि क्यों है।

यहाँ बात सिर्फ उन प्राणियों की कर रहे हैं जिन्हें स्तनधारी कहते हैं; मतलब वे प्राणी जिनकी मादाएँ अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं। इनमें गाय-बकरियाँ, हाथी-घोड़े, ऊँट, बन्दर-भालू, व्हेल-सील जैसे जीव शामिल हैं। वैज्ञानिकों ने देखा है कि इन सब में मादा, बच्चे जनना बन्द करने के बाद ज़्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहतीं। यानी कि प्रजनन करना बन्द कर देने के बाद जल्दी ही वे स्वयं भी सिधार जाती हैं। लेकिन कुछ स्तनधारी ऐसे देखे गए हैं जिनमें मादा प्रजनन क्षमता खतम होने के बाद भी कई वर्षों तक जीवित रहती हैं।



मनुष्यों के अलावा सिर्फ किलर व्हेल और छोटे पंखों वाली पायलट व्हेल में ही ऐसा देखा गया है। इन प्राणियों में मादा का 25 प्रतिशत जीवन तो प्रजनन रुक जाने के बाद होता है। तो वैज्ञानिकों को अचरज होना स्वाभाविक है कि ये प्राणी बाकी स्तनधारियों से इतने भिन्न क्यों हैं।

इसे वैज्ञानिक थोड़ा अलग शब्दों में कहते हैं। आमतौर पर बुढ़ाने की क्रिया पूरे शरीर में एक साथ शुरू होती है और जीव की मृत्यु के साथ खतम होती है। लेकिन ऐसा लगता है कि कुछ जीवों में बुढ़ाने की दो क्रियाएँ अलग-अलग चलती हैं। पहली उनके प्रजनन कार्य के बुढ़ाने की क्रिया और दूसरी उनके शेष शरीर के बुढ़ाने की क्रिया। किसी कारण से कुछ प्राणियों (मनुष्य, व्हेल वगैरह) में ये दो क्रियाएँ एक-दूसरे से जुदा हो गई हैं। मनुष्यों वगैरह में भी मादा में ही ऐसा होता है कि एक उम्र के बाद उनकी प्रजनन क्षमता समाप्त हो जाती है। जहाँ तक इन प्राणियों में नर का सवाल है, तो वे लगभग आखिर तक प्रजनन करने में समर्थ बने रहते हैं। तो ये मादाएँ प्रजनन रुक जाने के बाद भी इतना जीवन क्यों पाती हैं? इसे ऐसे भी पूछ सकते हैं कि क्यों मनुष्यों, किलर व्हेल वगैरह में प्रजनन कार्य पूरी उम्र तक नहीं चलता।

जीवों के विकास के सिद्धान्त में एक धारणा यह है कि प्रत्येक प्राणी अधिक से अधिक सन्तानें पैदा करे। जब वह अधिक से अधिक सन्तानें पैदा करता/करती है तो उसके गुण अगली पीढ़ी में अधिक से अधिक प्रकट होते हैं। इसके अनुसार प्रत्येक प्राणी के जीवन का एक उद्‌देश्य है - सन्तान पैदा करना। इसे उस प्राणी की फिटनेस कहते हैं। तो ऐसा क्यों होता है कि कुछ प्राणियों में सन्तान पैदा करने की क्षमता खतम होने के बाद भी वे जीवित बने रहते हैं। इस जीवन से उनकी फिटनेस तो बढ़नी नहीं है। वैज्ञानिकों को लगता है कि यदि कोई प्राणी जीवित है तो उस जीवन की कुछ लागत होती है (भोजन, पानी वगैरह के रूप में)। और सन्तानों के रूप में उसे कुछ लाभ मिलते हैं। इसलिए प्रजनन कार्य रुक जाने के बाद उस प्राणी का जीवित रहना बहुत महँगा साबित होता है क्योंकि लागत तो लगती रहती है, लेकिन लाभ नहीं मिलता।



तो वैज्ञानिकों ने विचार करना शुरू किया कि इसका कारण क्या हो सकता है। अभी कोई पक्का तो नहीं कह सकते लेकिन सोच-विचार में से एक सिद्धान्त निकला है। इस सिद्धान्त को नाम दिया गया दादी-नानी परिकल्पना। परिकल्पना का मतलब है कि यह बात अभी एक विचार या धारणा भर है और इसको सिद्ध करने की ज़रूरत है।

विचार यह है कि किसी भी प्राणी में जींस पाए जाते हैं, जो उसके गुण तय करते हैं। प्रत्येक प्राणी को आधे जींस माता से और आधे जींस पिता से मिलते हैं। इस प्रकार से कोई भी प्राणी अपनी प्रत्येक सन्तान को अपने आधे जींस देता है। यदि हम जींस की दृष्टि से देखें तो प्रत्येक प्राणी आधा अपनी सन्तान के समान होता है। प्रत्येक प्राणी के आधे जींस उसके भाई-बहनों से भी मेल खाते हैं। मान लो हम तीन भाई हैं। तीनों में आधे-आधे जींस एक जैसे हैं। यदि सिर्फ जींस के हिसाब से देखें तो मेरे दो भाई मिलकर मेरे बराबर हो जाएँगे।

इसी तरह से दादी-नानी का भी हिसाब लगा सकते हैं। चलो नानी की बात करते हैं। एक महिला की तीन लड़कियाँ हैं, तीनों आधी-आधी उसके जैसी ही हैं। अब तीनों की तीन-तीन लड़कियाँ होती हैं। यानी कुल नौ नातिनें हैं। प्रत्येक नातिन जींस के हिसाब से एक-चौथाई अपनी नानी जैसी ही है। इसका मतलब है कि अपनी लड़कियों की लड़कियाँ



हों, तो उसमें भी नानी के जींस तो बच ही रहे हैं और अगली पीढ़ी में जा ही रहे हैं।

वैज्ञानिकों का विचार है कि जिन प्राणियों में शिशु, जन्म के काफी समय बाद तक माँ पर निर्भर रहता है, उनमें नानी बहुत मददगार होती है। उनका यह भी कहना है कि नानी खुद बच्चे पैदा करती रहे, उसकी लागत बहुत अधिक होती है जबकि अपनी बेटियों को सन्तान की परवरिश में मदद करना ज़्यादा फायदेमन्द होता है।

यानी कुछ प्राणियों में प्रजनन कार्य रुक जाने के बाद भी मादाएँ इसलिए जीवित रहती हैं ताकि वे सन्तानों की परवरिश में अपनी बेटियों की मदद कर सकें। इसे दादी-नानी परिकल्पना कहते हैं। इसके पक्ष में कुछ प्रमाण तो मिले हैं लेकिन पक्का नहीं कहा जा सकता कि दादी-नानी की यह भूमिका है। कई आदिम समुदायों के अध्ययन से पता चला है कि दादी-नानी मौजूद हों, तो नाती-पोतियों की परवरिश में मदद मिलती है और बेटियाँ ज़्यादा सन्तानें पैदा कर पाती हैं। कारण यह बताते हैं कि दादी-नानी बच्चों की परवरिश का काफी काम कर लेती हैं, जिससे उन बच्चों की माँ अन्य काम (जैसे भोजन का इन्तज़ाम करना) कर पाती है। कुछ अध्ययनों में देखा गया है कि ऐसे समुदायों में जिन बच्चों की दादी-नानी होती हैं, उनके जीवित रहने की सम्भावना ज़्यादा होती है।

इस मामले में कुछ वैज्ञानिकों ने किलर व्हेल नाम के एक प्राणी का भी अध्ययन किया है।

किलर व्हेल में भी मादाएँ प्रजनन की उम्र के काफी बरसों बाद तक जीवित रहती हैं। अनुमान है कि मादा किलर व्हेल 30-40 वर्ष की उम्र में बच्चे पैदा करना बन्द कर देती हैं, जबकि उनकी कुल आयु लगभग 100 साल होती है। वैज्ञानिकों ने देखा है कि किलर व्हेल में दादी-नानी अपने नाती-पोतियों को उन स्थानों को पहचानना सिखाती हैं जहाँ भोजन के लिए अच्छी साल्मन मछलियाँ बड़ी तादाद में मिल सकती हैं। इसके अलावा वे अपने नाती-पोतियों को मछली खिलाती भी हैं। अध्ययन में पता चला कि जिन किलर व्हेल की दादी-नानी मर जाती हैं, उसके दो साल के अन्दर उनके नाती-पोते भी ज़्यादा मरते हैं। किलर व्हेल कहानियाँ तो नहीं सुनातीं, मगर अपने अनुभव से नाती-पोतियों को शिकार करना ज़रूर सिखाती हैं।

तो वैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्यों और किलर व्हेल जैसे प्राणियों में दादी-नानी का महत्व यह है कि उनके बच्चों के बच्चों का जीवन बेहतर हो जाता है, वे ज़्यादा उम्र पाते हैं और ज़्यादा स्वस्थ रहते हैं। हालाँकि अभी इस बात से सारे वैज्ञानिक सहमत नहीं हैं।

एक बौना लिपिक

सी एन सुब्रह्मण्यम्

कर्नाटक के मैसूर शहर के पास कावेरी नदी के तट पर सोमनाथपुर का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसे सोमनाथ नामक किसी सेनापति ने आज से लगभग 750 साल पहले (सन 1268 में) बनवाया था। यह विशाल मन्दिर बेहद खूबसूरत है। इसकी खासियत यह है कि इसमें एक इंच की जगह भी ऐसी नहीं है जिसे सोने के आभूषण की तरह तराशा न गया हो। तरह-तरह के बेल-बूटे, फूल-पत्ते, ज़ंजीर और हार के बीच कई अद्भुत शिल्प भी हैं। मैं उन्हें देखता आ रहा था कि मेरी नज़र एक शिल्प पर टिक गई।

मन्दिर के शिखर के एक स्तर पर कई मोटे बौने बने हुए थे। कोई नाच रहा था, कोई बीन बजा रहा था और एक कुछ लिख रहा था। वह था हट्टा-कट्टा, तोंद वाला एक बौना लिपिक। वह एक पेड़ के नीचे बैठकर ताड़ के पत्तों पर एक लम्बी और मोटी लेखनी से लिख रहा था। उसे शायद मणि-मालाएँ बहुत पसन्द थीं। उसने सिर पर, पाँव में, हाथ में, गले में, भुजाओं पर और यहाँ तक कि उँगली में भी माला पहन रखी थी।

कौन था वह, क्या लिख रहा था? क्या वह मन्दिर का हिसाब-किताब लिख रहा था? क्या वह कोई ग्रन्थ रच रहा था? क्या वह राजकीय दस्तावेज़ लिख रहा था? पता नहीं। मगर जो भी लिख रहा था, शान्ति से और तन्मयता से लिख रहा था।

तेरहवीं सदी में लिपिकों की बहुत पूछ थी। वैसे आज भी है – भला कौन-सा दफ्तर बिना लिपिक के चल सकता है? लेकिन उन दिनों लोग कम पढ़े-लिखे थे, तो लिपिकों से कुछ डरते भी थे। पता नहीं क्या लिख रहा है, और उसका अंजाम क्या होगा। कहते हैं कि यमराज भी ऐसे ही एक लिपिक चित्रगुप्त से मरे हुए लोगों के हिसाब लेता है, यह तय करने के लिए कि उन्हें स्वर्ग भेजे कि नरक। तो लिपिक की ताकत के क्या कहने!

चित्र 1:
सोमनाथपुर मन्दिर का ऊपरी हिस्सा





चित्र 2: बौना लिपिक

लोग लिपिकों से डरते भी थे और उनके बारे में तरह-तरह के किस्से-कहानियाँ भी कहते-सुनते थे। अगर कहानी लिपिकों की लिखी हुई हो तो ज़ाहिर है उसमें उनकी प्रशंसा होती थी। किसी और ने लिखी हो तो बताया जाता कि लिपिक कितने धूर्त होते हैं और गलत हिसाब-किताब लिख-लिखकर लोगों को परेशान करते हैं, या फिर राजा के कोष को ही खाली करवा देते हैं। एक प्रसंग में यह भी कहा गया है कि लिपिक एक हाथ से लिखता जाता है और दूसरे हाथ से हलके-से उसे मिटाते हुए बदल भी देता है। सोमनाथपुर का लिपिक भी तो एक हाथ से लिख रहा है और उसके दूसरे हाथ का अँगूठा पता नहीं उस पत्र पर क्या गुल खिला रहा है!

बहरहाल, मुझे यह शिल्प बहुत अनोखा और आकर्षक लगा, सो मैंने तुम्हारे साथ साझा किया।

मन्दिर का चित्र



स्वयं प्रकाश जी हिन्दी के जाने-माने साहित्यकार हैं। वे चकमक में नियमित रूप से लिखा करते थे। कुछ समय के लिए वे चकमक की सम्पादकीय टीम के सदस्य भी रहे। वे एक उत्कृष्ट कहानीकार थे। चकमक में 'प्यारे भाई रामसहाय' नाम की उनकी कहानियों की एक श्रृंखला कई सालों तक चली। स्नेहिल, खुशमिज़ाज और सरल स्वभाव के धनी स्वयं प्रकाश जी दिसम्बर 2019 में चल बसे। चकमक में छपी उनकी कहानियों में से एक कहानी यहाँ प्रस्तुत है। यह कहानी जून 2009 के अंक में प्रकाशित हुई थी।

प्यारे भाई रामसहाय

स्वयं प्रकाश
चित्र: जोएल गिल



बात तब की है जब मैं नवीं कक्षा में पढ़ता था। हमारी कक्षा में अमृतलाल नाम का एक लड़का था। प्यार से सब उसे "इम्मी" कहते थे। इम्मी फुटबॉल का बहुत अच्छा खिलाड़ी था। वह न सिर्फ स्कूल की फुटबॉल टीम में था, बल्कि सम्भाग की टीम में भी खेल चुका था। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। कई बार वह समय पर फीस जमा नहीं करवा पाता था और उसे अकसर अपनी फीस माफ करवाने के लिए इसके-उसके पीछे घूमते देखा जा सकता था। उससे कहा गया था कि जिस दिन उसका चयन राज्य स्तरीय टीम में हो जाएगा, उसकी फीस माफ कर दी जाएगी। नतीजतन स्कूल के बाद अँधेरा होने तक वह स्कूल के मैदान पर फुटबॉल खेलता रहता – कभी अकेला ही दौड़ते हुए मैदान के चक्कर लगाता रहता।

एक दिन सुबह-सुबह पता चला कि इम्मी के पिताजी की मृत्यु हो गई है। हमें बड़ा दुख हुआ। पूरी कक्षा पर जैसे पाला पड़ गया। आधी छुट्टी में जब बाहर निकले तो सड़क से इम्मी के पिताजी की शव यात्रा निकल रही थी। सबसे आगे एक आदमी इम्मी की बाँह थामे चल रहा था। इम्मी के हाथ में एक छींका था जिसमें एक धुआँती मटकी रखी थी। पीछे-पीछे उसके पिताजी की अर्थी और अर्थी के साथ चलते बीच-पच्चीस लोग।

तीसरे दिन बालकिशन और राधेश्याम ने आपस में कुछ बात की और हम सबको बुलाकर कहा कि हम लोगों को इम्मी के यहाँ "बैठने" जाना चाहिए। तब तक मुझे पता नहीं था कि बैठने जाने का मतलब अफसोस ज़ाहिर करने जाना होता है। बालकिशन और राधेश्याम के सुझाव से सब सहमत थे। लेकिन जब अशोक ने कहा कि सब सफेद कपड़े पहनकर जाएँगे तो मामला ज़रा उलझ गया। सबके पास तो सफेद शर्ट-पैंट था भी नहीं, एक-दो के पास था भी तो धुला हुआ नहीं था या फटा हुआ था। दूसरे, सफेद कपड़े पहनने के लिए स्कूल की छुट्टी के बाद पहले घर जाना पड़ता, फिर स्कूल आना पड़ता। जबकि अधिकांश के लिए स्कूल की छुट्टी के बाद सीधे स्कूल से इम्मी के घर जाना सुविधाजनक था। वैसे भी इम्मी का घर स्कूल से ज़्यादा दूर नहीं था।

तो अगले दिन हम लोग स्कूल से सीधे इम्मी के घर गए – "बैठने"।

इम्मी का घर खूब सारे पेड़ों से घिरा एक खण्डरनुमा, लेकिन हवादार एकमंज़िला मकान था जो इस समय सूना पड़ा था। हम बाहर खड़े संकोच में पड़े ताका-झाँकी कर रहे थे। इतने में एक बड़ी उम्र की लड़की ने हमें देखा और पूछा, "कौन चाहिए? इम्मी? आओ, आओ। आ जाओ। इम्मी झझ... तेरे दोस्त आए हैं।"

बोलते-बोलते लड़की मकान के पीछे कहीं चली गई।

हम चुपचाप सरकते हुए भीतर घुसे और कमरे के नंगे-ठण्डे फर्श पर एक-दूसरे से सटे-सटे पालथी मारकर बैठ गए।

चार-पाँच मिनट बाद इम्मी दिखाई दिया। अपने नाप से कहीं छोटा गुसा-मुसा सफेद कुरता-पजामा पहने, घुटा हुआ सिर और पीछे छोटी-सी चोटी। पहचान में नहीं आ रहा था। इम्मी ज़ोर-ज़ोर से बोलता हुआ भीतर आया, "मैं सोच ही रहा था कि स्कूल से भी कोई न कोई तो आएगा ज़रूर। और? क्या हाल हैं? कैसा चल रहा है? कल गणित का टेस्ट हुआ था क्या? और गहलोत सर के क्या हाल हैं? स्टेट में सिलेक्ट करवा देते मेरे को तो कम से कम जूता और जर्सी तो मिल जाती। पर, उनकी तो फरमाइशें ही गज़ब! अरे यार, भार्गव आ रहा है क्या? मेरी गणित की कॉपी भार्गव के पास ही रह गई है। खैर, उससे कहना वही रख ले। अब मुझे उसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी!"

"तेरे पिताजी को क्या हुआ था, इम्मी?" अशोक ने पूछा।

"उनको तो टीबी थी न! बहुत दिनों से!" इम्मी ने ऐसे कहा जैसे यह बात अन्य सभी की तरह हमें भी मालूम होनी चाहिए थी।

इतने में ही वह बड़ी लड़की पीतल के एक लोटे में ठण्डा पानी ले आई। साथ ही पीतल का एक गिलास भी। प्यास तो हम सबको लगी ही थी। सबने पानी पिया।

फिर कुछ शोर जैसा सुनाई दिया तो इम्मी उठकर पीछे गया, तुरन्त लौटकर आया तो हाथ में आठ-दस अमरूद थे। बोला, "अमरूद खाओगे? अपने बगीचे के हैं। लो, खा लो। कुछ अमरूद तोतों के कुतरे हुए हैं। मालूम है ना, तोतों के कुतरे हुए बहुत मीठे होते हैं। लो...!" वह एक-एक अमरूद फेंकता गया। हम कैच करते गए। समझ में नहीं आ रहा था खाएँ या न खाएँ, पर इम्मी खुद खा रहा था। हमें सकुचाते देख उसने बेतकल्लुफी से कहा, "अरे, खाओ, खाओ। ऐसा कुछ नहीं। हमारे यहाँ चलता है।"

संकोच के मारे हम धीरे-धीरे खाने लगे। अमरूद मीठे थे। और भूख तो लगी ही थी। इम्मी बोला, "तोते हैं ना, इत्ते आते हैं कि क्या बताऊँ। और खाएँ तो खाएँ, चलो कोई बात नहीं, पर साले कच्चे-कच्चे भी ज़रा-सा कुतरकर नीचे गिरा देते हैं। हमने पेड़ पर जाली भी बिछाई, तो पट्ठे जाली को ही काट गए। और खाओगे? अरे यार, तुम लोग पीछे ही क्यों नहीं चले चलते? जक्कू को चढ़ा देंगे, वो तोड़-तोड़कर देता जाएगा। बाकी कोई मत चढ़ना। अमरूद की डाली बहुत कच्ची होती है।" बोलते-बोलते वह चल पड़ा।... पीछे-पीछे हम...। घर के पिछवाड़े अमरूद के बड़े-बड़े दो पेड़ थे। कुछ छोटे बच्चे अमरूद तोड़ और खा रहे थे। हमें देखकर वे चले गए। हम अमरूद खाने में लग गए और थोड़ी देर के लिए भूल ही गए कि हम यहाँ अमरूद खाने नहीं, बैठने आए थे।

कोई घण्टे भर बाद बाहर निकलने लगे तो मज्जू ने इम्मी से पूछा, "स्कूल कब आएगा?"

इम्मी बोला, "अब नहीं आऊँगा।"

राधेश्याम ने पूछा, "तो फिर क्या करेगा?"

इम्मी बोला, "सब्ज़ी का ठेला लगाऊँगा। जहाँ बाऊजी लगाते थे – भण्डारी मिल के सामने, वहीं लगाऊँगा। काका गाँव से सब्ज़ी लाते हैं। उनके दोनों बेटे मिल के आगे लगाते हैं। मैं इधर लगाऊँगा। दिन के पचास रुपए भी कमाऊँगा तो भोत है यार। मैं हूँ और माँ है। और है कौन? एक बहन थी, उसकी शादी कर दी। वैसे आदमी पढ़-लिखकर भी क्या करता है? काम-धन्धा ही तो करता है।"

"और फुटबॉल?" किसी ने धीरे-से पूछा।

"फुटबॉल से रोटी नहीं मिलती। समझे? कोई कित्ता ही बड़ा प्लेयर हो जाए...? ये खेल-वेल सब भरे पेट वालों की बातें हैं।" इम्मी चिढ़ गया। "काम-धँधा तो उसे करना ही पड़ेगा। समझे? हम लोग चुप और उदास हो गए।

राधेश्याम ने इम्मी को गले लगाकर कहा, "तेरे पिताजी की डेथ का बहुत अफसोस हुआ इम्मी!"

इम्मी बोला, "सब लिखा के लाते हैं, भैया। जब खत्म हो जाती है तो हो जाती है। फिर रोओ, चाहे छाती कूटो, चाहे जो भी करो!"

इम्मी अपनी उम्र से बहुत बड़ा लग रहा था और एकदम आदमियों की तरह बोल रहा था। हम चुपचाप और मुँह लटकाए बाहर निकल गए और चले आए।

चार-पाँच साल बाद एक शाम कुछ बच्चे स्कूल के मैदान पर फुटबॉल खेल रहे थे। तभी बारिश आ गई। अँधेरा-सा हो गया था। लेकिन खेल बन्द नहीं हुआ था। कुछ बच्चे बारिश में तरबतर भीगते हुए भी खेल रहे थे। अचानक एक लम्बा-चौड़ा आदमी पता नहीं कहाँ से आया और बच्चों के साथ खेलने लगा। वह बच्चों को छका रहा था और उससे लटकने-चिपकने के बाद भी बच्चे उससे गेंद नहीं छीन पा रहे थे। घण्टे भर बाद वह आदमी अपने कपड़े निचोड़ता चुपचाप उधर चला गया जहाँ सड़क किनारे एक सब्ज़ी का ठेला तेज़ बरसात में लावारिस-सा खड़ा था।



दर्दनाशक दवाएँ किस तरह काम करती हैं?

प्रनन्दिता बिस्वास

अगर तुम्हें कभी दर्द महसूस ही नहीं होता, तो क्या होता? गिरने, चोट लगने से और पिटने से तुम कम डरते! है कि नहीं?

लेकिन ऐसा नहीं है। दरअसल दर्द हमारे जीवित रहने के लिए बहुत ज़रूरी चीज़ है। दर्द इस बात का संकेत होता है कि हमारे शरीर में कुछ खतरनाक चीज़ हो रही है, जिसे रोकने की हमें कोशिश करनी चाहिए। सोचो, अगर खरोंच लगने पर दर्द नहीं होता तो हम घाव की तरफ ध्यान नहीं देते। और हमारा बहुत सारा खून बह जाता। अगर गरमागरम पानी पड़ने पर हमारी चमड़ी जल जाने पर भी हमें दर्द नहीं होता तो शायद हम अपने महत्वपूर्ण अंगों के जल जाने तक कुछ नहीं करते। इसलिए हमारे शरीर के बचाव में दर्द की अहम भूमिका होती है।

हालाँकि दर्द महत्वपूर्ण होता है पर कभी-कभी इसे सहन करना असम्भव होने लगता है। जैसे हाथ टूटने पर इलाज के लिए डॉक्टर के पास जाने तक भी तुम दर्द में ही रहोगे। फिर डॉक्टर दर्द कम करने के लिए तुम्हें कोई दर्दनाशक दवा देगा।

क्या तुमने कभी सोचा है कि दर्दनाशक दवाएँ कैसे काम करती हैं? उन्हें कैसे पता होता है कि तुम्हें किस जगह पर दर्द है और उन्हें कहाँ जाकर अपना काम करना है? लेकिन पहले हम ये जान लेते हैं कि हमें दर्द महसूस कैसे होता है?

दर्द का एहसास क्या होता है?

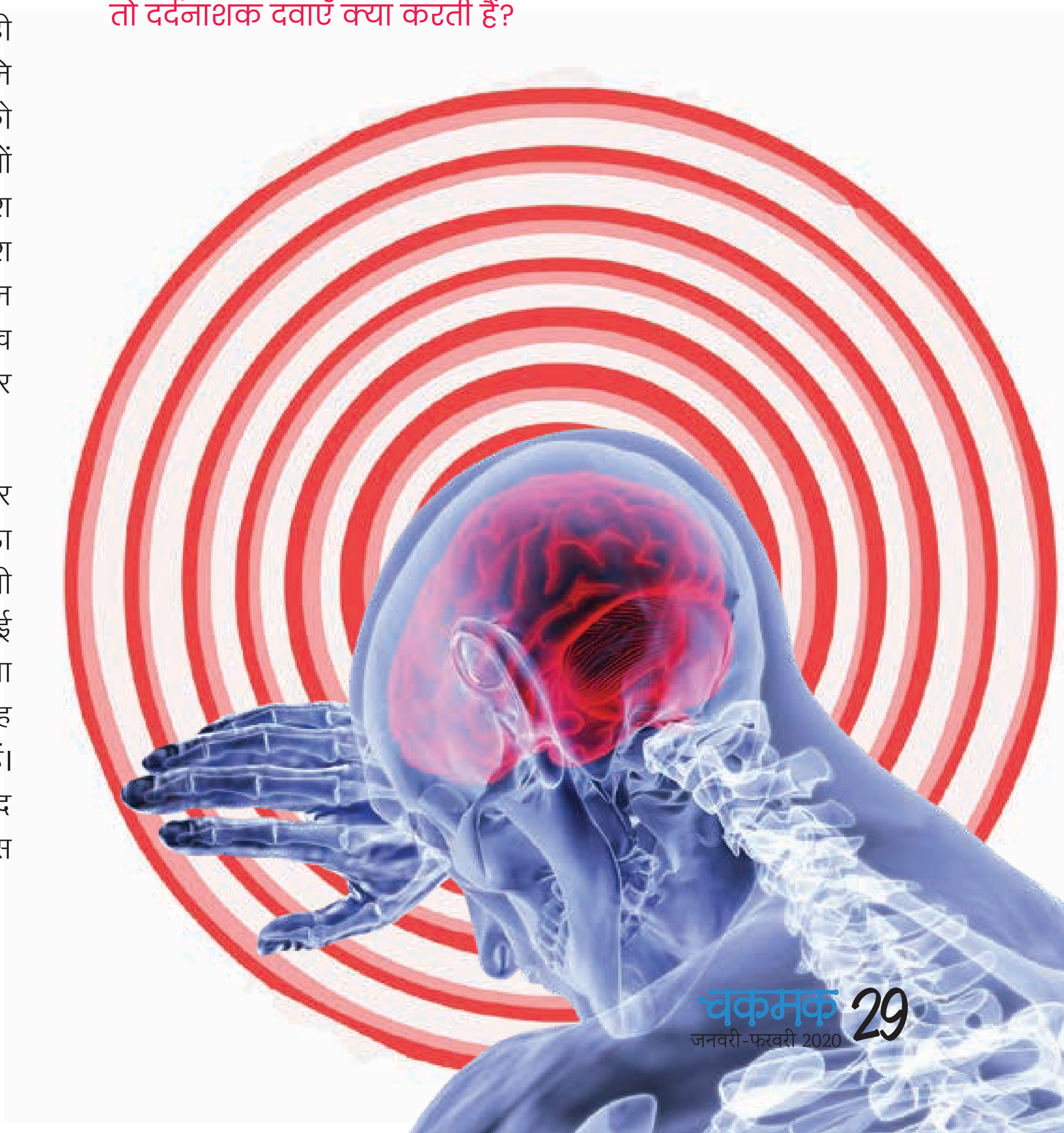
शरीर में होने वाले दूसरे एहसासों की तरह ही दर्द के एहसास में भी हमारे मस्तिष्क और तंत्रिकाओं की भूमिका रहती है। तंत्रिकाएँ शरीर के विभिन्न भागों में से आती-जाती हैं। इस बात को समझने के लिए कि हमारे आसपास क्या हो रहा है, हमारी कुछ तंत्रिकाओं के सिरे हमारे परिवेश से संकेत (जिसे उद्‌दीपन कहते हैं) पकड़ लेते हैं। तंत्रिकाओं के ये सिरे ग्राही कहलाते हैं। यह हमारे पूरे शरीर में, और खास तौर से हमारी ज्ञानेन्द्रियों में फैले रहते हैं। अलग-अलग प्रकार के ग्राही अलग-अलग प्रकार के उद्‌दीपन प्राप्त करते हैं, जैसे स्पर्श ग्राही हमारी त्वचा में होते हैं और ध्वनि ग्राही हमारे कानों में। उद्‌दीपन को पकड़ने के बाद ये ग्राही तंत्रिकाओं के माध्यम से मस्तिष्क को सन्देश पहुँचाते हैं। मस्तिष्क इस सन्देश को 'पढ़ता है' और हमें उद्‌दीपन (जैसे स्पर्श या ध्वनि) का अनुभव होता है। और ये सब कुछ पलभर के भीतर हो जाता है।

हमारे शरीर में एक खास प्रकार के ग्राही भी होते हैं, जिन्हें पीड़ा ग्राही कहा जाता है। यह तभी हरकत में आते हैं जब कोई उद्‌दीपन खतरनाक बन सकता हो। यही वे ग्राही हैं जिनकी वजह से हम दर्द को महसूस कर पाते हैं। ये हमारे शरीर में हर जगह मौजूद होते हैं। आओ, देखें कि ये किस तरह काम करते हैं।

अगर तुम अपनी उँगली को सुई की नोंक पर रखकर दबाओ तो शुरू में तो तुम्हें सिर्फ नोंक महसूस होगी, कोई दर्द नहीं होगा। इस समय तुम्हारे सामान्य स्पर्श ग्राही काम कर रहे होते हैं, न कि पीड़ा ग्राही। लेकिन अगर तुम सुई पर और दबाव डालोगे तो तुम्हारे पीड़ा ग्राही हरकत में आ जाएँगे। तुम्हें दर्द महसूस होगा और तुम्हारा मस्तिष्क तुम्हारे शरीर को सुई को उँगली से दबाने से रोकेगा।

पीड़ा ग्राहियों के हरकत में आने के लिए तुम्हें कितना दर्द सहन करना पड़ता है, ये पहले से तय नहीं होता। शरीर के किसी हिस्से में कोई आघात महसूस होने पर वह हिस्सा कुछ खास तरह के रसायन छोड़ता है। यह दर्द शुरू होने की सीमा को और नज़दीक ला देते हैं। इससे तुम को बहुत कम उद्‌दीपन पर भी दर्द महसूस होने लगता है। उदाहरण के लिए अब अगर तुम सुई को बहुत हलके-से भी दबाओगे तो तुम्हें दर्द हो सकता है। यही वजह है कि टूटे हुए हाथ को हलके-से छूने पर ही उसमें दर्द होने लगता है।

तो दर्दनाशक दवाएँ क्या करती हैं?



पीड़ा ग्राहियों के सक्रिय होने पर शरीर में उत्पन्न होने वाले रसायनों में से एक रसायन को प्रॉस्टेग्लैंडिन्स कहते हैं। और दर्द को रोकने का एक तरीका होता है इन प्रॉस्टेग्लैंडिन्स की गतिविधि को रोकना। तो, दर्दनाशक दवाएँ यही करती हैं। आओ, अब देखते हैं कि ये दवाएँ ऐसा किस तरह से करती हैं।

शरीर के क्षतिग्रस्त हिस्से सीधे तौर पर प्रॉस्टेग्लैंडिन्स उत्पन्न नहीं करते। इसके बजाय वे एक दूसरा रसायन पैदा करते हैं (हम इसे A कहेंगे) जो एंज़ाइम नामक कुछ दूसरे रसायनों (इन्हें हम E कहेंगे) के साथ अभिक्रिया करके प्रॉस्टेग्लैंडिन्स (P) बनाते हैं। ये रसायन (बाकी सभी पदार्थों की तरह) अणु नामक बहुत छोटे कणों से मिलकर बनते हैं। अलग-अलग पदार्थों या रसायनों के अणु अलग-अलग होते हैं। उनके आकार भी अलग-अलग होते हैं।

E के अणुओं में एक खास आकार का छेद होता है जिसमें A के अणु बिना कोई जगह छोड़े बिलकुल सटीक ढंग से फिट हो जाते हैं। A के इस छेद में आ जाने पर ही A और E अभिक्रिया करते हैं जिससे P उत्पन्न होता है। ये उसी तरह है कि किसी चाबी (जैसे A) को किसी ताले (जैसे E) को खोलने के लिए उसमें बिलकुल सही-सही बैठना ज़रूरी होता है।

एक प्रकार की दर्दनाशक दवा का अणु इस छेद में दाखिल हो पाता है और फिर वहाँ जाकर टूट जाता है, जिससे उसका एक हिस्सा वहीं रह जाता है। अब A का अणु E में नहीं बैठ पाएगा। ये उसी तरह है कि तुम ताले के भीतर एक टहनी घुसा दो और फिर उसे तोड़ दो जिससे उसका

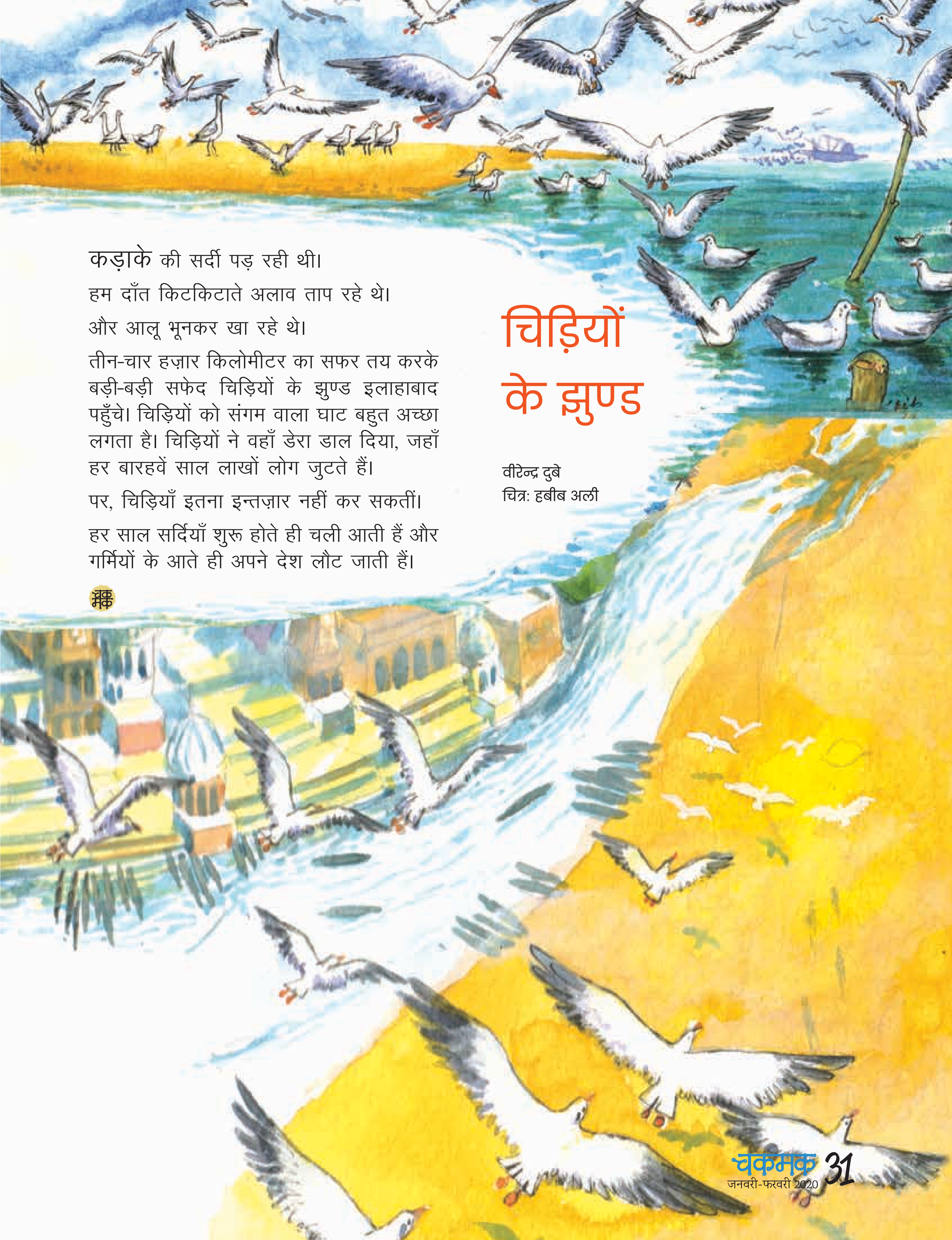
एक हिस्सा ताले में ही रह जाए। कुछ दूसरी दर्दनाशक दवाओं के अणु बिना टूटे इस छेद में बैठे रह सकते हैं, ठीक उस तरह जैसे ताले के भीतर कागज़ ठूँस दिया जाए। दोनों ही सूरतों में A के अणु E अणुओं के भीतर मौजूद छेदों में दाखिल नहीं हो सकते। और इसलिए उनकी अभिक्रिया नहीं होगी, जिससे P उत्पन्न नहीं होगा।

हमने इसकी चर्चा पहले ही की है कि किस प्रकार P दर्द शुरू होने की सीमा को और नज़दीक ला देता है, जिससे हमें हलका-सा उद्दीपन होने पर ही दर्द का एहसास होने लगता है। अगर P उत्पन्न ही न हो तो हमारे दर्द शुरू होने की सीमा जस की तस रहेगी और हमें अत्याधिक दर्द महसूस ही नहीं होगा।

इन दर्दनाशक दवाओं को यह कैसे पता रहता है कि उन्हें जाना कहाँ है? असल में उन्हें यह नहीं पता होता। दर्दनाशक दवाएँ हमारे रक्तप्रवाह में शामिल हो जाती हैं और इधर-उधर घूमती रहती हैं और जब उन्हें उनका लक्ष्य, यानी E, मिल जाता है तो वे उसमें घुस जाती हैं। तो अगर तुमने सिर दुखने के लिए कोई दर्दनाशक दवा खाई है तो तुम्हारे पैर में हो रहा दर्द भी उसी दवा से ठीक हो जाएगा।

वैसे कुछ दूसरे तरह के दर्द भी होते हैं। प्रॉस्टेग्लैंडिस के अलावा, हमें कम या ज़्यादा दर्द होने के और भी कारण होते हैं और उस दर्द को कम करने के तरीके भी अलग होते हैं। लेकिन इस सब के बारे में हम फिर कभी बात करेंगे। चमक

अंग्रेज़ी से अनुवाद: भरत त्रिपाठी।



चिड़ियों के झुण्ड

वीरेन्द्र दुबे
चित्र: हबीब अली

कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी।

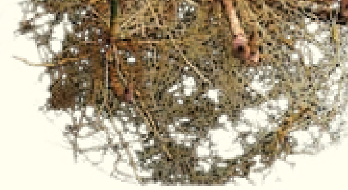
हम दाँत किटकिटाते अलाव ताप रहे थे।

और आलू भूनकर खा रहे थे।

तीन-चार हज़ार किलोमीटर का सफर तय करके बड़ी-बड़ी सफेद चिड़ियों के झुण्ड इलाहाबाद पहुँचे। चिड़ियों को संगम वाला घाट बहुत अच्छा लगता है। चिड़ियों ने वहाँ डेरा डाल दिया, जहाँ हर बारहवें साल लाखों लोग जुटते हैं।

पर, चिड़ियाँ इतना इन्तज़ार नहीं कर सकतीं।

हर साल सर्दियाँ शुरू होते ही चली आती हैं और गर्मियों के आते ही अपने देश लौट जाती हैं।



nature conservation foundation
science for conservation

विशाल घास

एक खास तरह की घास

ज़्यादातर घास सिर्फ तुम्हारे टखने जितनी लम्बी होती हैं। ज़्यादा से ज़्यादा यह तुम्हारे सिर जितनी ऊँची हो पाती हैं। लेकिन कुछ घास आठ माले की इमारत जितनी ऊँची हो सकती हैं! तुम सोच रहे होगे कि यह गज़ब की घास आखिर है क्या? तो बता दें कि यहाँ 'बाँस' की बात हो रही है।

अलग-अलग किस्म के बाँस अलग-अलग लम्बाई के होते हैं, लेकिन यह सभी तेज़ी-से बढ़ते हैं। बाँस सबसे तेज़ी-से बढ़ने वाले पौधों में से एक है - कुछ बाँस तो एक दिन में 100 सेंटीमीटर तक बढ़ सकते हैं। भारत में 130 से भी ज़्यादा किस्म के बाँस पाए जाते हैं। यूँ तो बाँस तुम्हें देशभर में दिखेंगे, लेकिन सबसे ज़्यादा पूर्वोत्तर में।

बाँस झुरमुट (clumps) में उगते हैं और अकसर 'बाँस के जंगलों' में फैले हुए मिलते हैं। ऐसे जंगलों में कई बाँस एक ही पौधे से आते हैं। अन्य घासों की तरह बाँस की जड़ें भी ज़मीन के नीचे फैलती हैं। इन जड़ों पर तने मिट्टी से बाहर निकलकर उगते हैं। बाँस 40-80 साल में एक ही बार फूलते हैं। इन पर चावल जैसे दानेदार फल लगते हैं और फिर वे मर जाते हैं।

फील्ड डायरी के लिए



बाहर निकलो और अपने घर के आसपास कहीं घास ढूँढ लो। ये कम से कम 30 सेंटीमीटर लम्बी हो। हो सके तो फूलों और बीजों वाली घास ढूँढो। पूरे पौधे को ध्यान से देखो। और पौधे का ऊपर से नीचे तक का पूरा चित्र अपनी डायरी में उकेर लो।

इसके बाद बाँस को ढूँढने निकलो। घर के पास के किसी पार्क या बगीचे में तुम्हें ऊँचे बाँसों का झुरमुट मिल सकता है। या फिर घर में किसी गमले में लगा बाँस का कोई छोटा पौधा भी मिल सकता है।

- एक झुरमुट में तुम्हें कितने बाँस के खम्बे दिख रहे हैं?
- क्या बाँस में फूल लगे हैं?
- बाँस कितने लम्बे हैं?
- एक बाँस कितना मोटा है - क्या तुम उसे अपने एक हाथ में पकड़ पाए?
- क्या तुम बाँस को सुन पाए - तनों की चरमराहट, पत्तों की सरसराहट?
- क्यो तुमने बाँस पर कोई जानवर देखे - पक्षी, गिलहरी या अन्य कोई?

तुम्हारे बनाए घास के चित्र की तुलना बाँस से करके देखो। क्या तुम्हें इनके पत्तों या तनों में कोई समानताएँ दिखती हैं?



हमारे आसपास बाँस

गिनकर बताओ कि तुम्हारे घर में कितनी चीज़ें बाँस से बनी हैं। ऐसी चीज़ों की एक सूची बनाओ।

ध्यान रखना कि कहीं तुम बेंत की बनी कुछ चीज़ें इस सूची में शामिल न कर लो, जैसे कुर्सी-सोफा या मेज़। बेंत या रट्टन, खजूर-नारियल परिवार का एक सदस्य है। यह घास नहीं है। बाँस खोखला होता है, जबकि बेंत ठोस होता है। बाँस और बेंत की बनी दो चीज़ों की तुलना करो। क्या तुम्हें इन दोनों के तनों में कुछ फर्क दिख रहा है?



बाँस खाने वाले

घास खाने वाले कई जानवर हैं जिनमें हिरन, बकरियाँ और कई कीड़े भी शामिल हैं। बाँस, खासकर इसके अंकुर के नरम तने को कई जानवर खाते हैं।

तुमने विशाल पाण्डा के बारे में तो सुना होगा। ये रोज़ लगभग 20 किलोग्राम बाँस के तने और पत्ते खाते हैं। सोचो, एक पाण्डा एक साल में कितने बाँस खाता होगा?

रैड पाण्डा, जो भारत के पूर्वोत्तर में पाया जाता है, भी बाँस खाता है। हाथी भी बाँस पसन्द करते हैं। क्या तुम्हें किसी अन्य जानवर के बारे में पता है, जो बाँस खाता है?









प्रतियोगिता

डायरी के पन्नों में उकेरे बाँस के चित्र और अपने नोट्स हमें chakmak@eklavya.in पर भेजो और एक किताब जीतने का मौका पाओ। साथ ही यह भी बताना कि हम अपनी ज़िन्दगी में बाँस का किस-किस तरह उपयोग करते हैं।

अनुवाद: विनता विश्वनाथन

क्यों क्यों

क्यों-क्यों में इस बार का हमारा सवाल था कि बच्चों को अपने निर्णय लेने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए या नहीं, और क्यों? हमने कई सारे बच्चों से यह सवाल पूछा। हमें दूसरी कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक के कई बच्चों के जवाब मिले। इनमें से कुछ जवाबों को तुम यहाँ पढ़ सकते हो। साथ ही इस बार हमने यह सवाल बच्चों के अलावा कुछ उम्र में बड़े लोगों से भी पूछा। इस विषय पर उनके विचारों को भी तुम आगे के पन्नों में पढ़ोगे। तुम्हारा मन करे तो तुम भी अपने जवाब हमें लिख भेजना।

मेरा यही कहना है कि बच्चों को स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। कुछ बड़े-बुज़ुर्गों का कहना है कि बच्चे बड़े भोले होते हैं। सही क्या है, गलत है उन्हें मालूम नहीं। उन्हें कोई आसानी से बेवकूफ बना सकता है। परन्तु वे इतने भी नासमझ या भोले नहीं होते कि स्वयं निर्णय ना ले सकें। यह पुरानी बातें चली आ रही हैं।

यह बातें बहुत गलत हैं। बच्चों के अन्दर इतनी क्षमता होती है कि वह स्वयं अपने निर्णय लें। क्या आप यही चाहते हैं कि आपके बच्चों को हमेशा कुछ भी करने के लिए आपके ऊपर ही आश्रित रहना पड़े। वे स्वयं कुछ भी ना कर सकें। वे ना जानें कि कहाँ, किस परिस्थिति में उन्हें क्या करना है। कभी-कभी बच्चे माँ-बाप की खुशी के लिए अपने लक्ष्य छोड़ देते हैं। लेकिन यह गलत है। माँ-बाप का बच्चों पर कोई भी दबाव नहीं होना चाहिए। उन्हें खुलकर स्वतंत्रता मिलनी चाहिए अपने निर्णय लेने की।

सबीहा नाज, आठवीं, रजनीदेवी ग्लोबल विलेज स्कूल
कानपुर देहात, कानपुर, उत्तर प्रदेश

बच्चों को अपने निर्णय लेना चाहिए, इसलिए क्योंकि हमें हमारे मम्मा या पापा बोलेंगे कि अब हम तुम्हें नहीं पढ़ाएँगे। तुम अब काम करोगे। किसी-किसी के घर में ऐसा भी होता है कि अगर बड़ी बहन फेल हो जाती है, तो मम्मी-पापा बोलते हैं कि हर बार फेल हो जाती हो। अब तुम्हें नहीं पढ़ाएँगे, शादी कर देंगे। और बहन बोलती है कि मैं शादी नहीं करूँगी। हमें पढ़ने का शौक बहुत रहता है। इसलिए मुझे लगता है कि शादी और पढ़ाई के बारे में हमको निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

मगर हमें हर चीज़ में निर्णय नहीं लेना चाहिए। जैसे कि हमारे बड़े भैया लोग रात में नशा करके घर आते हैं, तो मम्मी-पापा मारते हैं। मुझे लगता है कि कुछ चीज़ों में निर्णय लेना चाहिए जैसे कि स्कूल में और जीवन में। मैडम बोलती हैं तो भी हमें सोच और समझकर करना चाहिए। बिना सोचे कुछ नहीं करना चाहिए। अगर हमारे मम्मी-पापा बोलते हैं कि सही काम करो, तो हमें सोच-समझकर और हम उसमें सहमत है तभी करना चाहिए। बिना सोचे ऐसे ही नहीं मानना चाहिए।

शाहीन, पाँचवी, शहीद स्कूल, शहीद नगर, रायपुर, छत्तीसगढ़



चित्र: अमिति कान्त, पहली, सेंट मेरीज़ कॉन्वेंट स्कूल, देवास, मध्य प्रदेश

मुझे स्वतंत्रता मिली...

एक लड़की अपनी दादी के साथ एक गाँव में रहती है। वो अपनी दादी से एक बात पूछना चाहती थी। पर स्कूल जाने के कारण वो भूल गई। स्कूल से आकर वो खेलने लगी। खेलते-खेलते उसे याद आया कि उसे दादी से एक बात पूछनी थी। वो अपने दादी के पास गई और पूछा, “दादी, मैं बड़ी हो गई हूँ। तो, क्या आप मुझे अपनी स्वतंत्रता से रहने दोगी?” उसकी दादी ने कहा, “ठीक है, तुम बड़ी हो गई हो, तो तुम्हें तुम्हारी स्वतंत्रता से रहने दूँगी।” फिर वो बहुत खुश हो गई कि मुझे अपनी स्वतंत्रता से रहने को मिल गया। सुबह हुई, तो वो अपनी स्वतंत्रता से खेलने लग गई। फिर वो अपने घर आ गई और दादी को बताया कि “दादी, मेरी पहली आज़ादी यह है कि मैं कॉलेज तक पढ़ाई कर सकूँ।” दादी ने कहा, “बस एक ही?” तो उसने कहा, “स्कूल में कोई भी खेल खेल सकूँ।” दादी ने फिर से कहा, “और?” तो लड़की बोली, “स्कूल में डाँस में भाग ले सकूँ। दादी ने कहा, “और? फिर वो बोली, “दादी आप और-और की रट क्यों लगा रहे हो? मुझे बहुत हँसी आ रही है।” फिर दादी ने कहा, “चलो, तुम्हें कहीं घुमाने ले चलती हूँ।” वो बहुत खुश हुई और पूछने लगी कि दादी कहाँ घूमने जाएँगे? दादी ने बोला, “सोचना होगा। तीन जगह जा सकते हैं। या तो गार्डन, या समुद्र के किनारे, या फिर तुम्हारे दोस्तों के पास।” तो लड़की बोली, “दादी, मैं समुद्र के किनारे कभी नहीं गई हूँ। तो, हम समुद्र के किनारे चलें?” फिर दादी बोलीं, “ठीक है।” समुद्र के किनारे उसे बहुत मज़ा आया। फिर उसने अपनी दादी को थैंक्यू कहा और बोली, “दादी आप मुझे समुद्र के किनारे घूमने लाई हो। मेरे प्यारी दादी, मुझे समुद्र के किनारे स्वतंत्रता मिली।”

ऋचिका, पाँचवीं, शहीद स्कूल, रायपुर छत्तीसगढ़

समानता व बन्धुता के बिना स्वतंत्रता बेमतलब

झरना साहू
टीचर, कक्षा 5, शहीद स्कूल, रायपुर, छत्तीसगढ़

बच्चों को अपने निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए या नहीं, इस सवाल का जो जवाब सबसे पहले मन में आता है वो यह है कि 'हाँ, बच्चों को अपने निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। फिर चाहे वो निर्णय परिवार की किसी समस्या को लेकर हों या आगे की शिक्षा को लेकर, या फिर इस बात को लेकर कि वे जीवन में क्या बनना या करना चाहते हैं - मसलन डॉक्टर, इंजीनियर, बढ़ई, टेलर, दुकानदार आदि। निर्णय लेने की स्वतंत्रता होने से बच्चों के आत्मविश्वास में वृद्धि होती है और उनके अन्दर जो भी कला और क्षमताएँ होती हैं - जैसे कि डाँस, गीत, लेखन, चित्रकला, खेल आदि - उन सबको महत्व मिल पाता है।

लेकिन अगर हम इस सवाल के बारे में थोड़ा और सोचें तो शायद इसका जवाब इतना आसान न हो। उदाहरण के लिए, हम एक बार क्लास में खेल के बारे तय कर रहे थे। हमने बच्चों को कहा कि वे खुद ही अपने लिए कोई खेल चुन लें। इनमें से एक खेल फुटबॉल था और बच्चों ने यह निर्णय लिया कि फुटबॉल केवल लड़के चुन सकते हैं। अगर बच्चों को स्वतंत्रता से निर्णय लेने दें तो ऐसी दिक्कतें भी आएँगी! तब क्या करें?

पहले तो हमें सोचना है कि जब हम निर्णय लेने की स्वतंत्रता की बात करते हैं तो किन बातों पर निर्णय लेने की बात कर रहे हैं। मेरे मन में कुछ ऐसी बातें हैं - परिवार, समाज और शिक्षा से जुड़ी।

1. परिवार में
   - अपनी बात बोलने का
   - जाति से जुड़े नियमों के पालन न करने का
   - शादी करने/ना करने का
   - आत्मसम्मान व आत्मविश्वास के लिए जगह बनाने का

2. समाज में
   - अपनी इच्छानुसार रहने का
   - नागरिकता के अधिकार का
   - जाति के नियमों से मुक्त होने का
   - धर्म को लेकर
   - सही-गलत के चयन का

3. शिक्षा
   - जो पढ़ना चाहते हैं
   - जो बनना चाहते हैं
   - जीवन में कला, साहित्य, खेलकूद, गीत आदि का महत्व तय करने का

दूसरी बात यह है कि निर्णय लेने की स्वतंत्रता बाकी अन्य स्वतंत्रताओं जैसी ही है और बिना समानता व बन्धुता के स्वतंत्रता कोई मायने नहीं रखती। जब भी हम कोई भी निर्णय लेते हैं तो हमें ध्यान रखना होता है कि उसके आगे-पीछे होने वाले काम से किसी को कोई दिक्कत न हो। इसके लिए सही-गलत, अच्छे-बुरे की समझ होना ज़रूरी है। साथ ही समाज में मौजूद व्यवस्था व लोगों के बीच के रिश्तों से रूबरू होने की ज़रूरत है। और यह भी समझना ज़रूरी है कि जाति, धर्म और लिंग इन्हें कैसे प्रभावित करते हैं।

बच्चों में समानता, स्वतंत्रता और बन्धुता का विचार प्रसारित करने के लिए ऐसे स्कूल का निर्माण होना चाहिए जहाँ पर विशेष रूप से इन मुद्दों को समझा व माना जाए। मगर बच्चों में व स्कूल में होने से पहले शिक्षकों में यह सब चीज़ें होनी आवश्यक हैं। सिर्फ

बातों में नहीं, बल्कि इन विचारों को अपने रोज़मर्रा के जीवन जीने के तरीकों में शामिल करना होगा। अकसर स्कूलों में शिक्षकों के बीच भी गैर-बराबरी दिखती है। हमने जब अपने इलाके के कुछ छोटे प्राइवेट स्कूल के शिक्षकों का सर्वे किया तो यह देखा कि ज़्यादातर स्कूलों में सभी टीचर हमारे जैसी मज़दूर वर्ग की नौजवान महिलाएँ हैं, मगर प्रिंसिपल एक पुरुष है। वहाँ भी परिवार जैसे रिश्ते दिखे। कई महिला टीचरों ने कहा कि अकसर पेमेंट समय पर नहीं मिलता, मगर "सर पापा जैसे हैं। हम उनसे पैसों के लिए नहीं बोल सकते। जब ज़रूरत हो तो वो हमें मदद भी करते हैं।" या फिर उन्होंने यह भी कहा कि "सर अच्छे हैं। पापा जैसे जब हम कुछ गलत करते हैं, तभी डाँटते हैं। नहीं तो अच्छे से बात करते हैं।" कुछ स्कूलों में जहाँ पुरुष टीचर थे, उनको ज़्यादा पेमेंट मिलता है। यदि महिला और पुरुष शिक्षकों के बीच ऐसे गैर-बराबर रिश्ते हों तो बच्चों में समानता और स्वतंत्रता के मूल्य कैसे आएँगे? लड़कियों और लड़कों में भी फिर यह असमानता झलकेगी।

ऐसी स्थितियों में किसी के भी द्वारा किसी भी प्रकार का निर्णय लेना आसान नहीं होता क्योंकि जिस समाज में हम रहते हैं वो जाति, धर्म से बहुत बँधा हुआ है। साथ ही यह एक ऐसा समाज है जो ज़्यादातर लड़कियों पर हावी होता है। अकसर ये लड़कियों को अपने निर्णय लेने से रोकता है, फिर चाहे वो निर्णय शिक्षा, शादी, काम के बारे में ही क्यों न हों। ये उस इन्सान के अधिकार हैं - मगर इतनी रुकावटों के बीच निर्णय लेने की स्वतंत्रता एक पेचीदा मामला है। जैसे कि मेरी क्लास में एक लड़की स्कूल के कार्यक्रम में डाँस में भाग लेना चाहती है। हर साल लेती भी है। लेकिन इस साल उसकी एक लड़के के साथ दोस्ती के चलते उसके घरवालों ने उसे खूब मारा। और डाँस या किसी भी चीज़ में भाग लेने से मना कर दिया। उसका मन है, मगर अकसर ऐसी परिस्थिति में बच्चों को लगने लगता है कि वही गलत हैं। तभी तो मम्मी-पापा मना कर रहे होंगे। तो ऐसी परिस्थिति में बच्चे अपना निर्णय स्वयं न लेकर बड़े लोगों की बातों में आ जाते हैं।

इसी समाज की एक लड़की व एक महिला टीचर होने के नाते मुझे स्कूल में इन तीन मूलभूत चीज़ों को अपनी क्लास व आपसी रिश्तों में लाने की बहुत ज़्यादा ज़रूरत लगती है। इनके होने के साथ फिर बच्चों को अपने निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए और उन्हें अपने निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए। मुझे लगता है कि जब हमारे समाज में समानता, स्वतंत्रता व बन्धुता तीनों चीज़ें कायम होंगी तभी हम जाति नाम की मज़बूत कड़ी को तोड़ने में सक्षम हो सकेंगे। मगर मेरे मन में यह सवाल उठता है कि क्या वास्तव में अम्बेडकर का जो विचार था कि लोगों के बीच समानता, स्वतंत्रता व बन्धुता रहे, वो सम्भव हो पाएगा? और यह भी कि अगर ये मूलभूत चीज़ें हमारे समाज में अपनाई जाएँ, तब हमारे समाज का स्वरूप क्या होगा?

क्यों क्यों

हमें अपने निर्णय खुद लेने की आज़ादी मिलनी चाहिए क्योंकि हमें आज़ाद रहना अच्छा लगता है। आज़ाद रहने के निर्णय में जो हमें टोकता है, हमें अच्छा नहीं लगता है। मैं अपने निर्णय ले सकती हूँ। मैं पुस्तक पढ़ने के लिए निर्णय ले सकती हूँ। और बाल बढ़ाने के लिए निर्णय ले सकती हूँ। कुछ निर्णय हमें लेने चाहिए और कुछ निर्णय हमारे माता-पिता ले सकते हैं।

नैंसी यादव, चौथी
शासकीय प्राथमिक कन्या शाला पथरिया, दमोह
मध्य प्रदेश

एक बच्ची ने तय किया

रश्मि पालीवाल
लम्बे समय तक एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़ी रही हैं।

एक बार एक बच्ची ने तय किया कि वो स्कूल नहीं जाएगी। वो 6 या 7 साल की थी तब। एल.के.जी पास कर के यू.के.जी. या शायद कक्षा 1 में आ गई थी। उसके परिवार के सब लोग पढ़े-लिखे थे। वे उसे बहला-फुसलाकर, समझा-बुझाकर स्कूल जाने के लिए तैयार करने लगे। जब वो नहीं मानी, तो उन्होंने उसके निर्णय को स्वीकार करके स्कूल भेजने की कोशिश करना छोड़ दिया। उन्हें लगा कि वो किसी के साथ इतनी ज़ोर-जबरदस्ती नहीं कर सकते। कुछ महीने वो बच्ची घर-बाहर के खेल और अनुभवों में मस्त रही। माता-पिता भी रोज़ उसे बहलाने, खींचकर स्कूल के ऑटो में डालने, रोते-चीखते हुए उसे आँखों से ओझल करने की तकलीफ से मुक्त रहे। अगले साल एक नए स्कूल में उसका दाखिला किया गया। वो वहाँ पढ़ने जाने लगी।

लोग सोचते हैं कि एक बार कोई बात मान ली जाए तो उसी की आदत पड़ जाती है। इस चिन्ता में बच्चों की कोई बात मान लेने में बड़ों को बहुत डर लगता है। बहुत सारे बड़े लोग अपने बच्चे के लिए अपनी ज़िम्मेदारी से इतना डरे हुए रहते हैं कि वो किसी स्थिति को ठीक से समझने और उस पर सोचने-विचारने की कोशिश ही नहीं करते। पर बच्चों पर दूसरों की ज़िम्मेदारियों का इतना डर नहीं होता... वे अपने लिए ज़िम्मेदार होते हैं। वे अपना रास्ता सोच-समझकर बनाते रहते हैं।

बड़े लोग हमेशा ये ही सोचते हैं कि वे बच्चों की देखभाल कर रहे हैं लेकिन बच्चे अपनी देखभाल भी करते हैं। एक बार एक 4 साल के बच्चे की माँ काम पर दूसरे शहर जा रही थीं। बच्चा माँ को सामने से जाते देखेगा तो रोएगा और जाने नहीं देगा- ये सोचकर उसके दादाजी उसे पास के एक पार्क में घुमाने ले गए। थोड़ी देर बाद बच्चे ने दादाजी से कहा, "चलो, घर चलें। माँ अब चली गई होंगी।" बच्चा बड़ों जैसा ही समझदार और ज़िम्मेदार था, छोटा था तो क्या हुआ?

ऐसे ही एक 10 साल के बच्चे को एक माता-पिता एक बोर्डिंग स्कूल दिखाने ले गए। वे चाहते थे कि बच्चा वहीं पढ़े। बच्चा भी बोर्डिंग स्कूल में पढ़ना चाहता था। पर, स्कूल देखकर उसने कहा, "स्कूल बहुत बड़ा है माँ। मैं एक साल और बड़ा हो जाऊँ, फिर यहाँ आ जाऊँगा।" माता-पिता ने उसकी बात का सम्मान किया और एक साल बाद ही उसका दाखिला वहाँ किया गया।

कुछ लोगों को यह बात समझ में आ गई है कि बच्चे समझदार और ज़िम्मेदार लोग होते हैं और उन्होंने बच्चों के लिए ऐसे स्कूल बनाए हैं जहाँ वे अपने निर्णय स्वयं ले सकें। गुजरात के शिक्षाविद गिजु भाई (1885-1939) ऐसे ही लोगों में से एक थे। उनका कहना था - "बच्चा कद में छोटा है, पर उसकी आत्मा तो पूरी है।"

मैंने भारत में ऐसे स्कूल या सिखाने के केन्द्र देखे हैं जहाँ सिखाने वाले लोग इस बात से परेशान नहीं होते कि कोई बच्चा कक्षा में चल रहे काम में ध्यान न दे, और बाहर कुछ और करने के लिए चला जाए। फिर, जो कुछ भी वो करना चाहता था उससे जब उसका मन भर जाए, तो कक्षा में आकर काम में शामिल हो जाए। ऐसे स्कूलों में बड़े लोग इस बात की चिन्ता कम करते हैं कि वो बच्चों को क्या 'सिखा' रहे थे। वे लोग इस बात का ध्यान ज़्यादा रखते हैं कि बच्चा क्या-क्या सीख रहा है.... कक्षा के अन्दर हो या फिर बाहर। ऐसी जगहों में लोगों को अनुशासन बनाकर रखने में भी

क्यों क्यों

ज़्यादा परेशानी नहीं होती। यह परेशानी तो उनको होती है जो ऊपर से अनुशासन बनाकर रखना चाहते हैं। अगर बच्चे अपने मन के काम कर रहे हों तो अनुशासन अन्दर से बना रहता है। छोटे बच्चों की मनमर्ज़ी को तो लोग कुछ हद तक मान भी लेते हैं पर 10-12 साल से बड़े बच्चों पर अपना हुकुम चलाते ही हैं। उम्र बढ़ने के साथ ज़िम्मेदारियाँ बड़ी होती जाती हैं, पर बड़े बच्चों के पास भी दुनिया का उतना तजुर्बा नहीं होता जितना 30-35 साल के वयस्क के पास होता है। तो, अपना तजुर्बा बताना और सलाह देना तो बनता है। लेकिन उसके बाद भी कोई बड़ा बच्चा अपने लिए फैसला लेना चाहे, तो उसे लेने देना चाहिए- अगर उससे कोई तुरन्त का खतरा पैदा न हो रहा हो। बच्चों के सोचने-समझने की शक्ति तभी बढ़ेगी जब उन्हें सोचने-समझने और फैसले लेने का मौका मिलेगा। पर, हम शायद आज्ञाकारी लोग पसन्द करते हैं, सोचने-समझने वाले लोग नहीं। इसलिए बच्चों को अपने फैसले नहीं लेने देते।

बच्चों की सोच-समझ बनाने में आदेश देने की बजाय बड़े उनको समझाने की कोशिश कर सकते हैं। पर हम ऐसा तभी करेंगे जब हम बच्चों को पूरा इन्सान मानेंगे, जिसके कुछ अधिकार हैं और जो सोच-समझ सकता है।

लंदन के पास एक स्कूल 1922 में बना था- समरहिल। उसे ए. एस. नील नाम के एक आदमी ने बनाया। नील का कहना था कि बचपन में हमारे अन्दर जो दुख, कुंठा और गुस्सा पैदा कर दिया जाता है, वही दुनिया में हो रहे युद्ध, नफरत और दंगे-फसादों की जड़ है। उस स्कूल में किसी बच्चे को कोई नहीं बताता कि उसे क्या करना चाहिए। बच्चा पूछे, तो भी नहीं! तभी हर बच्चा अपनी रुचि और ज़रूरत को खोजता है और उसकी ज़िम्मेदारी भी खुशी-खुशी उठाता है। जब बच्चा अपना फैसला लेकर कोई मदद माँगता है, तो मदद की जाती है। स्कूल के अधिकतर नियम बड़े और बच्चे मिलकर बनाते हैं और लागू करते हैं। ऐसे स्कूल को चलाने में कई चुनौतियाँ होंगी, कई कमियाँ होंगी, पर इससे हमें बच्चों और बड़ों के बीच एक अलग रिश्ते की सम्भावना दिखाई देती है।

हाँ स्वतंत्रता मिलनी चाहिए क्योंकि मेरी मैडम आती हैं तो बात करने लगती हैं और हम जब भी पीछे मुड़ते हैं तो हमें उलटे हाथ पर मारती हैं। और फिर कक्षा के बाहर खड़ा कर देती हैं। इसलिए हमें स्वतंत्रता मिलनी चाहिए।

यशस्वी कुट्रे, छठवीं, किंडर स्कूल, देवास, मध्य प्रदेश

हाँ बच्चों को स्वतंत्रता मिलनी चाहिए वरना बच्चे गाँधीजी जैसे सफेद कपड़े लपेटकर और हाथ में लाठी लेकर नारेबाज़ी करेंगे और बोलेंगे कि हमें निर्णय लेने की आज़ादी चाहिए।

आर्यन, छठवीं, केरला पब्लिक स्कूल, देवास, मध्य प्रदेश

क्यों क्यों

मिलनी चाहिए, क्योंकि हमें भी कुछ बनने का मौका मिलना चाहिए। हमारा भी मन करता है। एक बार एक लड़की ने कहा कि पापा मुझे टीचर बनना है। इसलिए उस लड़की के घर में लड़ाई हो गई थी।

रिया, पाँचवीं, एस.डी.एम.सी स्कूल, हॉज खास, दिल्ली

स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, इससे हमें अपनी बात रखने का मौका मिलता है, जिससे हम निडर होकर जी सकते हैं।

अक्षरा, तीसरी, ज़िला परिषद प्राथमिक स्कूल, घोड़पेठ, चन्द्रपुर, महाराष्ट्र

नहीं मिलनी चाहिए, क्योंकि बच्चे कभी कुछ ऐसे निर्णय ले लेते हैं जिससे उनको व उनके परिवारवालों को शर्मिन्दगी महसूस होती है और पूरे गाँव के ताने सहने पड़ते हैं। उन बच्चों को घुमक्कड़, आवारा और न जाने क्या-क्या कहकर आरोपित किया जाता है।

सुखविन्दर कौर, दसवीं, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, सिसैया, खटीमा, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड

बच्चों को इतनी स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए कि वह अपनी मनमानी करें व सत्कार करना ही भूल जाएँ। बच्चों को स्वतंत्रता इतनी ही मिलनी चाहिए कि वह अपने और अपने माता-पिता के व्यवहार को मन के भाव से समझ सकें। मगर बच्चे को माता-पिता इतनी स्वतंत्रता दें की वह अपने मन की बात कहने से कभी-भी नहीं डरे।

वेदान्त राज परमार, आठवीं, एस.एच.एस, देवास, मध्य प्रदेश

हम स्कूल आते हैं तो हम खेलने जाते हैं तो हमको 4 से 5 बजे तक खेलने को आते हैं। तो मैं अपनेआप निर्णय लेने चाहिए।

पायल, तीसरी, शहीद स्कूल, शहीद नगर, रायपुर, छत्तीसगढ़

अगर बच्चे फैसले लेंगे तो उनका मानसिक और भौतिक विकास होगा और उनमें आत्मनिर्भरता आएगी।

हामिद अली, बारहवीं, अपना तालीम घर, फैज़ाबाद, उत्तर प्रदेश

बच्चों को आज़ादी नहीं देना चाहिए वरना बच्चा बरबाद हो जाता है। वरना अपनी मनमानी करता है, माता-पिता की बात नहीं मानता है।

हुसैन, पाँचवी, शहीद स्कूल, शहीद नगर, रायपुर, छत्तीसगढ़

हम सब बच्चों को निर्णय लेने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए क्योंकि अगर हम स्वतंत्र होंगे तो अपनी मन की बातें सभी को बता सकते हैं।

जितेन्द्र, दूसरी, अपना स्कूल सम्राट सेंटर, कानपुर, उत्तर प्रदेश

हमें अपने निर्णय खुद लेने की आज़ादी मिलनी चाहिए क्योंकि:

- हमें घर के अन्दर बन्द पिंजरे जैसा लगता है। इसलिए हमें आज़ाद रहना चाहिए।
- हम अपने निर्णय अच्छे-से ले सकते हैं।
- हमें पढ़ने-लिखने की आज़ादी मिलेगी।
- कौन-सी पुस्तक पढ़नी चाहिए, इसकी आज़ादी भी रहेगी।
- जैसे हमारा भारत आज़ाद हुआ था, वैसे हमें भी आज़ाद रहना चाहिए।

कीर्ति पटेल, चौथी, शासकीय प्राथमिक कन्या शाला, पथरिया, दमोह, मध्य प्रदेश

बहुत हद तक नहीं। बच्चे नासमझी में गलत निर्णय भी ले सकते हैं। माता-पिता और बड़ों के लिए यह दुःख देने जैसा होता है। अपने निर्णय लेने का मतलब यह नहीं कि बच्चे हर बात को पर्सनल ले लें।

हिमानी, दसवीं, राजकीय इण्टर कॉलेज, केवर्स, पौड़ी, उत्तराखण्ड



चित्र: मीना, चौथी, गणेशपुर, उत्तराखण्ड

क्यों क्यों

बाल अधिकार क्या हैं?

आर पद्मिनी
लगभग 25 साल UNICEF के साथ काम, अब बेंगलूरु के चाइल्ड राइट्स ट्रस्ट के साथ हैं।

यह विचार कि बच्चों के भी कुछ अधिकार होते हैं सबसे पहले पिछली सदी की शुरुआत में उभरा। इस दिशा में तमाम अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों के बाद, 1989 में ये संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार समझौते (CRC) के रूप में सामने आया। इसे दुनिया के लगभग हर देश ने अपनाया है।

CRC में बहुत सारे अधिकार शामिल हैं। इनमें एक महत्वपूर्ण अधिकार है - सहभागिता का अधिकार (अनुच्छेद 12-18)। इनमें यह कहा गया है कि बच्चों को उनसे जुड़े सभी मसलों पर अपनी राय देने की स्वतंत्रता और निर्णय-प्रक्रिया में शामिल रहने का अधिकार है। उन्हें अधिकार है कि वयस्क उनकी बात सुनें और उस पर गौर करें।

CRC में यह भी कहा गया है कि ये अधिकार बच्चे की उम्र और परिपक्वता पर निर्भर करते हैं और अलग-अलग परिस्थितियों में इन अधिकारों का स्तर अलग-अलग हो सकता है। CRC में इस बात पर भी ज़ोर दिया गया है कि बच्चों में दूसरों के मतों को सुनने व उनके अधिकारों का आदर करने की क्षमता और ज़िम्मेदारी विकसित की जानी चाहिए। अभिभावक का कर्तव्य है कि वे बच्चों का मार्गदर्शन करें। (यहाँ 'अभिभावक' का अर्थ है ऐसा कोई वयस्क जो बच्चों के जीवन में प्रभाव रखता हो या उनका मार्गदर्शन करने की स्थिति में हो, जैसे कि माता-पिता, शिक्षक, कानूनी अधिकारी, सलाहकार आदि)। इस तरह, सहभागिता और निर्णय-प्रक्रिया में शामिल होने के बच्चों के अधिकार में अभिभावकों के मार्गदर्शन की अहम भूमिका है। अभिभावक इस बात के लिए खास तौर पर ज़िम्मेदार हैं कि बच्चे किताबों, प्रिंट व ऑडियो-विज़ुअल मीडिया, सोशल मीडिया व इंटरनेट के माध्यम से सूचना के विविध और विश्वसनीय स्रोतों तक पहुँच सकें। उनकी यह ज़िम्मेदारी भी है कि वे सूचना के अवांछनीय स्रोतों से बच्चों को बचाएँ ताकि बच्चे किसी भी मुद्दे पर सोच-समझकर फैसला ले सकें। अभिभावकों को बच्चों को ऐसा रास्ता दिखाना होगा जिससे न तो वे खुद को नुकसान पहुँचाएँ, और ना ही दूसरों की आज़ादी, अधिकार और प्रतिष्ठा को आहत करें।

आज प्रौद्योगिकी की मदद से सूचनाओं और लोगों के मतों को आसानी से फैलाया और हासिल किया जा सकता है। लेकिन इसके कुछ खतरे भी हैं। अगर बच्चे किसी मुद्दे पर बेबाकी से अपनी राय रखें तो हो सकता है उन्हें दूसरों के विरोध का सामना करना पड़े, उनके खिलाफ भेदभाव हो और उन्हें डराया-धमकाया जाए।

बच्चों को अपने फैसले खुद नहीं लेने चाहिए। अगर हम अपने फैसले खुद लेंगे तो हम कहीं खो भी सकते हैं। और अगर हम फैसले लेंगे तो माता-पिता हमें फैसले लेने नहीं देंगे। जब हम बड़े हो जाएँगे तब फैसले खुद लेंगे।

तेजस्वी साहू, चौथी, अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़

एक चिन्ता यह भी है कि कई सरकारें सूचनाओं तक बच्चों की पहुँच को नियंत्रित कर रही हैं, खास तौर से यौन स्वास्थ्य और लैंगिक पहचान से सम्बन्धित सूचनाओं को। इसकी वजह से बच्चों को सोच-समझकर निर्णय लेने में और खुद को सुरक्षित रखने में मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है।

ये अधिकार इतने महत्वपूर्ण क्यों हैं?

कुछ समय पहले तक अधिकांश समाजों में यह मान्यता थी कि बच्चों से जुड़े मामलों में निर्णय माता-पिता को ही करना चाहिए। CRC इस विचार को खारिज करता है। बड़े होते हुए बच्चे में निर्णय लेने की समझदारी भी विकसित होती है। अगर हम बच्चों की इस क्षमता को विकसित नहीं होने देंगे तो इससे न सिर्फ बच्चों में हताशा फैलेगी, बल्कि उनका परिवार और पूरा समाज भी उनके मूल्यवान सुझावों से वंचित रह जाएगा। यह बात जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू होती है - रोज़मर्रा की बातों में, दोस्तियों में, पढ़ने-लिखने की आदतों में, सोशल मीडिया के सम्बन्ध में, पढ़ाई में, मौज-मस्ती में, कैरियर के चुनाव में, और सार्वजनिक जीवन में भी। इसके अलावा, इस तरह की आज़ादी न मिलने से बच्चों का मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास रुक जाता है।

इस सन्दर्भ में यह भी समझना ज़रूरी है कि हर समाज में निर्णय लेने के अधिकार पर तरह-तरह की पाबन्दियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए, विभिन्न क्षेत्रों में लड़कियों की सहभागिता कम होती है क्योंकि उन्हें घर के कामकाज ज़्यादा करने पड़ते हैं। उन पर सामाजिक/सांस्कृतिक बन्दिशें होती हैं और इसलिए भी कि समाज व परिवारों में सत्ता समीकरण उनके खिलाफ होते हैं।

भारत में बाल अधिकार

भारत में बच्चों द्वारा सूचनाओं और मतों का आदान-प्रदान करने और निर्णय-प्रक्रियाओं में शामिल रहने के कई उदाहरण हैं। हालाँकि CRC की भावना और उसके मानकों का निष्ठापूर्वक पालन करने के मामले में अभी भी बहुत कुछ होना बाकी है, लेकिन शुरुआत प्रोत्साहित करती है। कई राज्यों में बाल अधिकार क्लबों और मीना क्लबों की स्थापना की गई है। कर्नाटक में ग्राम पंचायतों में सालाना बाल अधिकार सभाएँ आयोजित करने का नियम बनाया गया है। केरल में भी बाल पंचायतें लगती हैं।

इसके अलावा, स्कूल संचालन समितियों में बाल प्रतिनिधियों की नियुक्ति जैसे कानूनी प्रावधान भी हैं। किशोर न्याय बोर्ड और बाल कल्याण समिति के नियम कहते हैं कि किसी भी मामले में फैसला लेने से पहले सम्बन्धित बच्चे की बात सुनी जाए और उसके नज़रिए को ध्यान में रखा जाए।

लेकिन कभी-कभी ये प्रावधान सिर्फ कागज़ पर ही सिमटकर रह जाते हैं। भारत में दस्तूर यही है कि बच्चे क्या पहनेंगे, कैसे मनोरंजन करेंगे, किससे दोस्ती करेंगे या मिलेंगे (खास तौर से लड़कियों के मामले में), क्या पढ़ाई करेंगे, कौन-सा कैरियर चुनेंगे आदि तमाम निर्णय उनके माता-पिता ही करते हैं।

औद्योगिक तौर पर विकसित पश्चिमी देशों में और उप-सहारा अफ्रीका व लैटिन अमरीका के कई विकासशील देशों में भी परिवारों में उतनी सख्ती नहीं बरती जाती है। कई लैटिन अमरीकी देशों और नेपाल, बांग्लादेश व फिलिपींस में बच्चे सार्वजनिक निर्णयों में भागीदारी करते हैं। बांग्लादेश में यातायात-सुरक्षा और अमरीका में हथियार-नियंत्रण जैसे कई अभियान हैं जिनमें न सिर्फ बच्चों की भागीदारी है, बल्कि वे बच्चों के नेतृत्व में चल रहे हैं। 2014 से बच्चों की आवाज़ों को राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर भी लगातार सुना जा रहा है। इसका सबसे उल्लेखनीय उदाहरण है - ग्रेटा थनबर्ग, जिसने जलवायु संकट पर अपनी आवाज़ उठाई है। कुल मिलाकर, दुनिया में स्थानीय स्कूल और स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्णयों में बच्चों की भागीदारी बढ़ रही है और साथ ही, बच्चों व युवाओं की अगुआई वाले संगठनों की संख्या भी।

पृथ्वी का चक्कर

राजेश जोशी
चित्र: लोकेश खोड़के

यह पृथ्वी सुबह के उजाले पर टिकी है
और रात के अँधेरे पर

यह चिड़ियों के चहचहाने की नोंक पर टिकी है
और तारों की झिलमिल लोरी पर

तितलियाँ इसे छूकर घुमाती रहती हैं
एक चाक की तरह

बचपन से सुनता आया हूँ
उन किस्साबाज़ों की कहानियों को जो कहते थे
कि पृथ्वी एक कछुए की पीठ पर रखी है
कि बैलों के सींगों पर या शेषनाग के थूथन पर,
रखी है यह पृथ्वी

ऐसी तमाम कहानियाँ और गीत मुझे पसन्द हैं
जो पृथ्वी को प्यार करने से पैदा हुए हैं!

मैं एक आवारा की तरह घूमता रहा
लगातार चक्कर खाती इस पृथ्वी के
पहाड़ों, जंगलों और मैदानों में
मेरे भीतर और बाहर गुज़रता रहा
पृथ्वी का घूमना
मेरे चेहरे पर उकेरते हुए
उम्र की एक-एक लकीर





दादाजी का कोट

पवन चौहान
चित्र: शुभम बंसल



दादाजी का काला कोट
बहुत पुराना, आउट ऑफ डेट
इसमें नहीं समाता अब
दादाजी का फूला पेट

दोनों बटन हैं खुलकर हँसते
बड़ी मुश्किल से काज में फँसते
बाजुएँ इसकी सिकुड़ी-सिकुड़ी
जेबें जैसे अकड़ी-जकड़ी

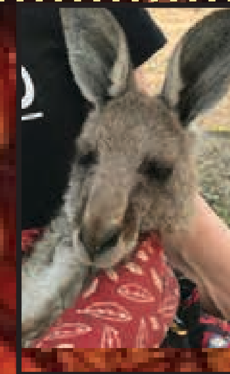
पोता बोला, दादाजी अब आ गई सर्दी
चलो ले आएँ नया कोट
उँगली थाम, बाज़ार चले दादा
कोट में डाल करारे नोट।

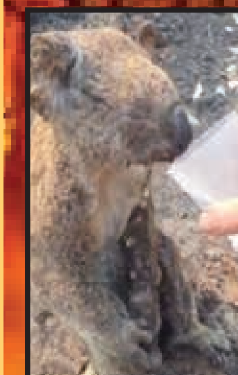




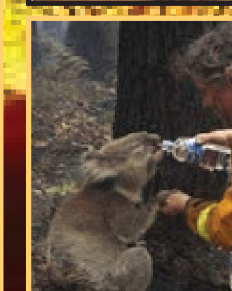


ऑस्ट्रेलिया की भयावह आग











हर साल भीषण गर्मियों में ऑस्ट्रेलिया में कई जगहों पर आग लगती है। ये ऐसी जगहें होती हैं जहाँ नमी बिलकुल नहीं होती। ज़्यादातर ये आग मनुष्य ही लगाते हैं। सितम्बर, 2019 में भी कुछ लोगों ने बदमाशी की और जंगलों में आग लगा दी। ये आग अलग-अलग जगहों पर लगी थी। लेकिन ये फैली कुछ इस तरह कि इस महाद्वीप के कई सारे इलाके, कई महीनों तक इस आग से जूझते रहे। इस आग में सिर्फ जंगल और जानवर ही नहीं, बल्कि मकान और लोग भी खतम हुए हैं।

वैसे आग का मौसम दिसम्बर से मार्च तक का होता है लेकिन इस बार आग कई महीनों पहले ही शुरू हो गई। पिछला साल इस दशक का सबसे गर्म साल था। यह औसत से 1.5 डिग्री सेल्शियस ज़्यादा गर्म रहा। इस कारण आग को जलाने के लिए पहले से अधिक सूखा ईंधन मिला। इससे आग लम्बे समय तक जलती रही और बुझने में भी समय लगा। इस कारण काफी सारा नुकसान हुआ। करोड़ों एकड़ जंगल जल गए। इससे निकले धुएँ ने कई शहरों में प्रदूषण को 20 गुना तक ज़्यादा कर दिया है। साथ ही लोग बड़े पैमाने पर पानी की कमी भी महसूस करने लगे हैं।

आग तो हर साल लग रही थी, लेकिन कई विशेषज्ञों का मानना है कि इस साल जलवायु-परिवर्तन के कारण तापमान में हुई वृद्धि ने लाखों-करोड़ों पेड़-पौधों, जानवरों व लोगों को खतरे में डाल दिया है। ऑस्ट्रेलिया में ये आग अभी बुझी नहीं हैं। चकमक



ग्रीनिश वॉर्बलर

रोहन चक्रवर्ती



ये सारा उजाला...

सुशील शुक्ल
चित्र: रबीन्द्रनाथ टैगौर



ये सारा उजाला सूरज का
सब देखाभाला सूरज का
दिन की इक चाबी सूरज की
और रात का ताला सूरज का

ये सारी हवाएँ सूरज की
और सारी दिशाएँ सूरज की
जो कीड़ा फँसता सूरज का
मकड़ी का जाला सूरज का

चींटी की आँख में सूरज है
और मोर की पाँख में सूरज है
पत्ते में, जड़ में, फूलों में
और शाख-शाख में सूरज है

सूरज से समन्दर सात बने
उसकी पीठ के तिल से रात बने

जो ब्रम्हपुत्र के तीर में हैं
बस्तर में हैं, कश्मीर में हैं
कोई उजला है, कोई काला है
सबको सूरज ने ढाला है
सूरज ही नज़रबन्दी में है
सूरज को देश निकाला है



गुठली, भैया और दीदी अपना दिन प्लान करने में लगे हैं। मम्मी-पापा दिन भर के लिए नानी के घर गए हैं, यानी कि आज तीनों अपनी मर्ज़ी के काम बिना रोकटोक कर सकते हैं। दीदी दोस्तों के साथ क्रिकेट खेलना चाहती है। भाई बिस्तर में घुसकर किताब पढ़ना चाहता है। और गुठली अभी भी तय नहीं कर पाई है कि वो क्या करे। आखिर ऐसे दिन बार-बार तो आते नहीं, जब कोई आपको रोके-टोके नहीं।

इन सब बातों पर विचार चल ही रहा था कि इतने में दरवाज़े की घण्टी बजी। "कौन?" गुठली ने पूछा। "मैं हूँ...।" वाक्य पूरा होने से पहले ही गुठली ने पूछा, "मैं कौन?" "मैं, छोटे मामा!" जवाब आया। दरवाज़ा खोला तो सामने दुबले-पतले, लम्बे, अठारह साल के छोटे मामा खड़े थे, हाथ में एक काली थैली लिए हुए। गुठली ने उन्हें नीचे से ऊपर तक देखा। और तभी दीदी-भैया एक स्वर में चिल्लाए, "ओह! तो, मम्मी-पापा को लगता है कि हम अभी भी छोटे बच्चे हैं। अपना ध्यान नहीं रख सकते। इसीलिए आपको भेजा है, है ना?" "नहीं-नहीं...", अचानक हुए हमले से मामा सकपका गए और बोले, "अरे! नहीं, बल्कि मेरी माँ को लगता है कि मैं अभी इतना बड़ा नहीं हुआ हूँ कि बड़ों की बातों में शामिल हो सकूँ। तो मैं खुद ही यहाँ आ गया।" यह सुनकर दीदी-भैया की हँसी निकल गई। दीदी बोली, "जो भी हो मामा, जब मेरे दोस्त आएँ तो तुम उनके सामने मत आना।" "और मुझे बिस्तर से उठाने की कोशिश मत करना।" भाई बोला।

"नहीं-नहीं, बिलकुल नहीं। बल्कि आज तो हम सब मिलकर पार्टी करेंगे। देखो, मैं चिकन लाया हूँ। चिकन करी बनाऊँगा सभी के लिए। तुम सब मदद कर देना।" मामा ने कहा। "नहीं, कभी नहीं।" भाई ने कहा। "मैं खाने में मदद कर सकती हूँ।" दीदी ने मुस्कराते हुए कहा। "मामा, मैं तुम्हारे साथ खाना बनाऊँगी।" गुठली ने उत्साह से कहा। "बस और क्या चाहिए मुझे, चलो गुठली बनाते हैं - स्पेशल चिकन करी।" मामा ने मुस्कराकर कहा। गुठली ने मामा की बाँह पकड़कर नीचे झुकाया और कान में कहा "मामा, बार-बार चिकन मत बोलो। मेरी दोस्त मुर्गी और चूज़ों को बुरा लगेगा।" ये सुनकर मामा ने मुँह पर उँगली रख ली। और दोनों रसोई की तरफ चल दिए।

तभी दरवाज़े की घण्टी बजी। गुठली ने भागकर दरवाज़ा खोला। देखा, दीदी के दोस्त आए थे। "दीदी तुम्हारे दोस्त आए हैं।" गुठली ज़ोर-से चिल्लाई। इतने में दीदी का एक दोस्त बोल पड़ा, "अरे! तुम वही लड़के हो ना जिसे फ्रॉक पहनना पसन्द है?" गुठली ने भौंहें उचकाकर जवाब दिया, "नहीं, मैं वो लड़की हूँ जिसे तुम लड़का समझते हो। और हाँ, कभी-कभी मुझे फ्रॉक पहनना अच्छा लगता है।" इतने में दीदी आ गई और हँसते हुए गुठली को ताली दी और दोस्तों के साथ क्रिकेट खेलने निकल पड़ी।

गुठली का ध्यान रसोई की तरफ गया। दौड़कर वहाँ पहुँची तो देखा कि मामा का चेहरा आँसुओं से भरा हुआ था। और वो सुड़-सुड़ भी कर रहे थे। "क्यूँ रो रहे हो मामा, नानी की याद आ रही है?" "नहीं, मैं तो प्याज़ काट रहा था... और इसमें मुझे नानी याद आ गई।" सुनकर दोनों हँस पड़े। "चलो, अब बस कुछ लहसुन छील लेते हैं।" मामा ने कहा। "मामा, बाहर चलो, पंखे के नीचे बैठकर करते हैं, वरना मुझे भी नानी याद आ जाएगी।" गुठली मस्ती से बोली। बाहर आकर मामा की हालत थोड़ी सुधरी। और खाने की तैयारी का काम आगे बढ़ा। अभी कुछ ही लहसुन छिले थे कि रसोई से बर्तन गिरने की आवाज़ आई। मामा और गुठली दोनों तेज़ी-से रसोई की तरफ भागे।

देखा तो बिल्ली चिकन की काली पॉलिथीन लेकर सीढ़ियों की तरफ भाग रही थी। मामा और गुठली भी उसकी तरफ लपके, पर बिल्ली उनसे ज़्यादा तेज़ी-से भाग रही थी। तभी काली थैली में छेद हो गया और चिकन के टुकड़े एक-एक करके उसमें से गिरने लगे। बिल्ली जितना तेज़ भागती, उतनी ही तेज़ी-से चिकन के टुकड़े भी गिरते जाते। और मामा-गुठली की जोड़ी उन्हें बिनती जाती।

छत तक पहुँचते-पहुँचते बिल्ली की काली थैली एकदम खाली हो चुकी थी। वो गुस्से और उदासी से

मामा-गुठली को देख रही थी। “मामा, थोड़ा-सा इसे दे दें?” गुठली को बिल्ली पर तरस आ गया। “हाँ, हाँ... ज़रूर। आखिर इसने इतनी दौड़धूप जो करी है, इतना हक तो इसका भी बनता है।” ऐसा कहते हुए मामा ने चिकन का एक टुकड़ा बिल्ली की तरफ उछाला। बिल्ली ने उसे हवा में ही पकड़ लिया और गायब हो गई, इत्मिनान से उसे खाने।

गुठली और मामा फिर रसोई में आ गए। मामा ने गुठली से कहा, “गुठली, हमने फर्श पर से चिकन के टुकड़े बटोरे हैं और बिल्ली से छुड़ाए हैं, ये बात सीक्रेट रहे तो अच्छा होगा।” “सही कह रहे हो मामा, वरना पापा तो इसे बिल्ली को ही खिला देंगे। वैसे मामा रसोई में इस तरह के कितने ही सीक्रेट होते होंगे न?” गुठली शरारत भरे अन्दाज़ में बोली। “और उन्हें सीक्रेट बने रहने देने में ही हमारी भलाई है।” मामा बोले और दोनों हँस पड़े।

कुछ ही देर में खाना तैयार हो गया। चिकन करी की खुशबू से पूरा घर महक रहा था। दीदी नहाकर खाने के लिए तैयार थी। और भाई भी किताब के पीछे से निकलकर आ चुका था। सब खाना शुरू कर चुके थे। भाई ने खाते ही कहा “वाह मामा, क्या चि...” वो अपनी बात पूरी कर पाता, उसके पहले ही गुठली ने उसे चिकोटी काटी और आँखें दिखाईं। “ओह!... सब्ज़ी करी लाजवाब बनी है।” भाई ने अपनी बात पूरी की। मामा मुस्कराए।

अब सभी चुपचाप खाना खा रहे थे और खाना चबाने के अलावा कोई आवाज़ सुनाई नहीं दे रही थी। तभी गुठली की नज़र सीढ़ियों से झाँकती बिल्ली की तरफ गई। गुठली मामा की कॉलर पकड़कर उनके कान को अपने मुँह तक लाई और फुसफुसाई “मामा, कहीं बिल्ली ने चिकन जूठा तो नहीं कर दिया था?” “चिन्ता मत कर गुठली, अगर खाने के बाद सभी म्याऊँ-म्याऊँ करने लगे तो... पता चल ही जाएगा।” सुनकर मामा और गुठली की हँसी निकल पड़ी। गुठली को अब इन्तज़ार था कि कौन पहले म्याऊँ-म्याऊँ करता है।

म्याऊँ-म्याऊँ

कनक शशि







डायनासौर को भी जूं होती थी



हम में से कई लोगों का पाला सिर में होने वाली जूं से पड़ा होगा, खास कर बचपन में। सिर से जूं निकालना और उनका पूरी तरह सफाया करना ज़रा मुश्किल काम है। हो भी क्यों ना, जूं फुर्ती-से बालों में छिपने में माहिर जो है। हाल ही में पता चला है कि पृथ्वी पर जूं का अस्तित्व पिछले 10 करोड़ वर्षों से है और उस वक्त उनके मेज़बान पंखों वाले डायनासौर हुआ करते थे।

दरअसल, वर्तमान जूं के जेनेटिक विश्लेषण से यह पता चल गया था कि पृथ्वी पर उनका अस्तित्व पंखों वाले डायनासौर के समय से है। लेकिन उनके जीवाश्म अब तक नहीं मिले थे, क्योंकि एक तो जूं सरीखे छोटे जीवों के अश्मीभूत होने (fossilized) की सम्भावना बहुत कम होती है। और यदि हो भी गए तो उन्हें खोज निकालना मुश्किल होता है। इसलिए जूं का इतना पुराना, और वह भी पंखों पर, जीवाश्म मिलना बहुत ही सनसनीखेज बात है।



मेसोफ्थिरस एंजेली अर्थात मेसोज़ोइक युग की जूं।

कीटों, खास कर जूं जैसे परजीवी के जीवाश्म को ढूँढने में चीन के कुछ शोधकर्ताओं ने काफी वक्त लगाया। और आखिरकार म्यांमार में मिले दो छोटे जीवाश्मों में उन्हें 10 कीट दिखाई दिए, जो नर्म पंखों के भीतर सुरक्षित थे। इन पंखों को देखकर लग रहा था कि उन्हें कुतरा गया था।

कीटों के ये जीवाश्म मात्र 0.2 मिलीमीटर लम्बे थे और आजकल की जूं जैसे नहीं दिख रहे थे। उनका मुँह वर्तमान जूं जितना परिष्कृत नहीं था और उनके नाखूनों और एंटीना पर सख्त और लम्बे रोम थे। आधुनिक जूं की तरह इन जूं के पंख नहीं थे और आँखें, एंटीना और पैर भी छोटे-छोटे थे। इससे लगता है कि वे बहुत तेज़ और लम्बा नहीं चलते होंगे। अलबत्ता, बाकी सारे लक्षण जूं के समान हैं। चूँकि प्राप्त जीवाश्म बहुत ही छोटे हैं इसलिए शोधकर्ताओं का अनुमान है कि वे अवयस्क जूं हैं और वयस्क जूं लगभग आधा मिलीमीटर लम्बे रहे होंगे।

अधिकतर वर्तमान जूं किसी एक खास प्रजाति या शरीर के किसी खास अंग पर बसेरा करते हैं, जैसे हमारे सिर की जूं। इसके अलावा जूं कई अन्य जानवरों और पक्षियों पर भी डेरा जमाती हैं। मनुष्य के सिर की जूं खून पीती है, लेकिन पक्षियों या जानवरों पर पाई जाने वाली जूं या तो पंख खाती है या त्वचा।

उपरोक्त दोनों जीवाश्मों में जो पंख हैं वे काफी अलग-अलग प्रकार के हैं और दो भिन्न डायनासौर के लगते हैं। इससे लगता है कि इस जूं का कोई एक खास मेज़बान नहीं था। पंखों पर क्षति के निशान देखकर लगता है कि ये इन जूं द्वारा खाए गए होंगे।

चूँकि ऐसा लगता है कि यह जूं पंख खाती है इसलिए ये अपने मेज़बान को काटती नहीं होगी। और डायनासौर को खुजली तो नहीं होती होगी। लेकिन जिस तरह से जूं ने पंखों को नुकसान पहुँचाया है, उसे देखकर लगता है कि डायनासौर अपने पंखों को साफ करते रहे होंगे। जैसे, आजकल के पक्षी जूं से छुटकारा पाने के लिए करते हैं। तो पंखदार डायनासौर के न सिर्फ पंख थे, बल्कि आजकल के पक्षियों के समान जूं उन्हें भी तंग करती थी।

स्रोत फीचर्स से साभार



चित्र: मान्या गोयल, पहली ए, द हेरिटेज स्कूल, रोहिणी, दिल्ली

मेरा पन्ना

मुलाकात नहीं हुई

पिंटु सोनी
आठवीं, डॉन बोस्को अशायलम
मोहनलाल गंज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

बहुत पुरानी बात है। एक दिन मैं अपनी मम्मी के साथ हरिद्वार गया था। वहाँ पर मैंने खूब मस्ती की और प्रार्थना भी की। परन्तु घर लौटते समय दानापुर नाम के एक स्टेशन पर ट्रेन रुकी। मैं पानी लेने गया इतने में ट्रेन चल दी। उस वक्त मेरी मम्मी ट्रेन में सो रही थीं और मैं उसी स्टेशन पर छूट गया था। उसके बाद क्या होना था। मैं स्टेशन पर बहुत देर तक रोता रहा। कुछ लोगों ने देखा और चले गए। कुछ लोगों ने पूछा लेकिन कोई मदद नहीं कर सके। फिर क्या, मैं स्टेशन पर ही रहने लगा। मेरे कुछ दोस्त भी बन गए जो अलग-अलग कारणों से स्टेशन पर रह रहे थे। मैं उन्हीं के साथ भीख माँगने लगा। कुछ महीनों बाद चाइल्ड लाइन का एक आदमी मुझे चाइल्ड लाइन ले गया। तीन-चार महीने मुझे वहीं रखा। फिर मुझे डॉन बोस्को अशायलम में भेज दिया जहाँ से मेरी पढ़ाई की शुरुआत हुई। उसके बाद मेरा जीवन खुशहाल तो हो गया, लेकिन मम्मी-पापा से आज तक मुलाकात नहीं हुई।

मुन्नी की रेल

यश
पाँचवीं, दिल्ली पब्लिक स्कूल
पटना, बिहार

रेल स्टेशन
पर आई
मगर मुन्नी उसे
पकड़ न पाई

रेल करे
छुक-छुक
मुन्नी बोले
रुक-रुक

मगर रेल
न रुकी
और मुन्नी
हुई दुखी



चित्र: द्युति, यू.के.जी. किड ज़ोन प्रीस्कूल, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश



मेरा पन्ना

चित्र: उदय, पूर्णा लर्निंग सेंटर, बेंगलुरु, कर्नाटका

जंगल का स्कूल...

शासकीय प्राइमरी स्कूल मगरलोद, धमतरी, छत्तीसगढ़ के 3 से 5 साल के बच्चों की सामूहिक रचना

एक जंगल में एक लोमड़ी थी। वह बच्चों को पढ़ाती थी। एक बच्चा स्कूल नहीं आता था। वह भाग जाता था। तब जंगल का राजा शेर बोला, "मैं तुम्हें पैसा दूँगा।" बच्चा शेर के पास गया, पैसा माँगीस। शेर झूठ बोल दीस। उसे खाने के लिए मन हो रहा था। तब बच्चा भाग गया। शेर उसको दौड़ा रहा था। दौड़ते-दौड़ते शेर थक गया। और पेड़ के नीचे बैठ गया। और सोचा... अरे भाई ये बच्चा तो बहुत तेज़ दौड़ता है! मैं नहीं दौड़ सकता।

नाव की यात्रा

दुर्गेश यादव,
पाँचवीं, प्राथमिक विद्यालय
धुसाह प्रथम, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश

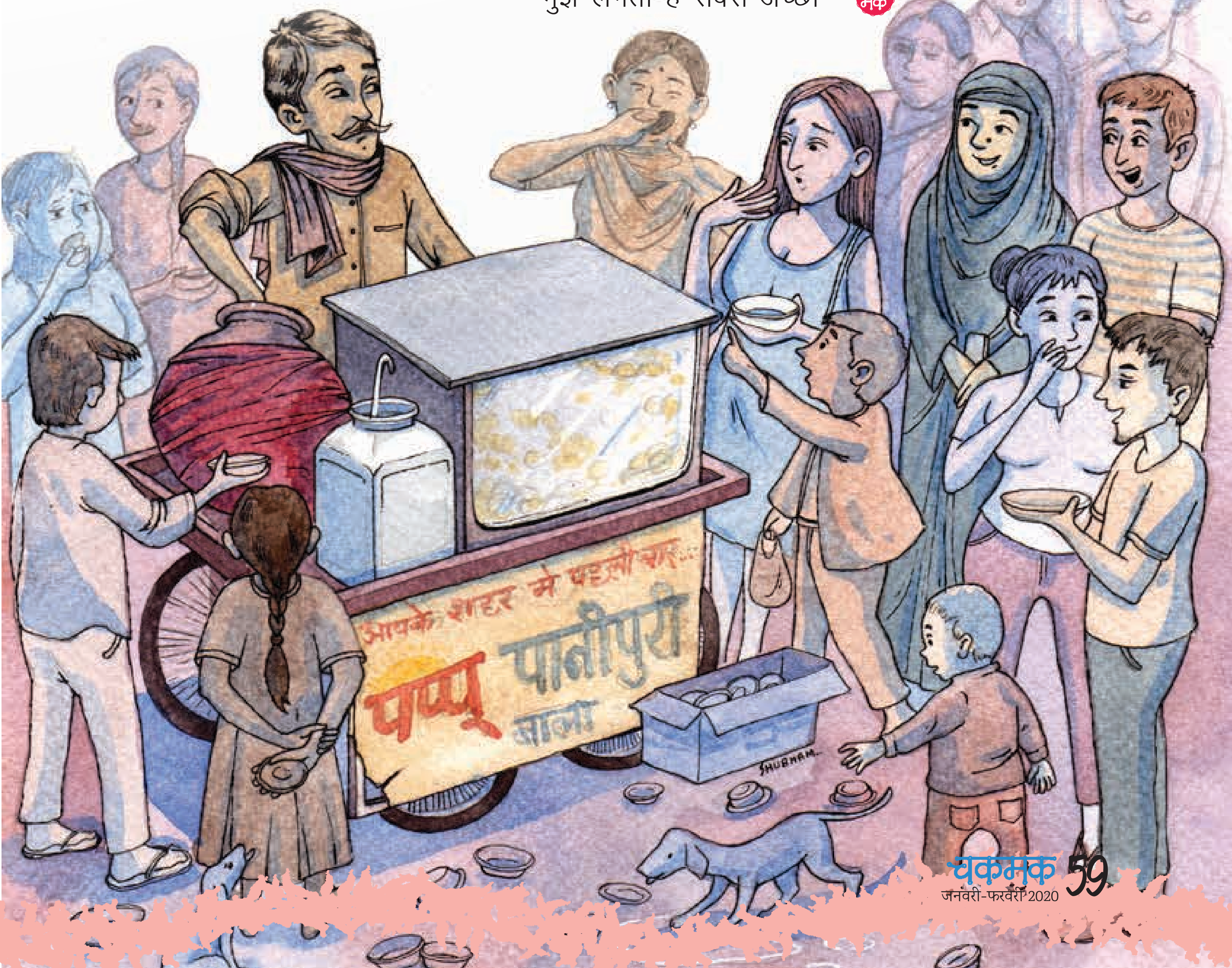
मैं एक बार मेले में गया जो नदी के किनारे लगा था। नदी पर नाव भी चलती थी। मैं और भाई नाव पर बैठे। नाव का टिकट 5 रुपए था। हमने पूरे 10 रुपए दिए। नाव की यात्रा करने में बहुत आनन्द आया। हम दोनों नाव से उतरकर मेले में गए तो सबसे पहले समोसा खाए। वहाँ पर मेरी बुआ रहती थीं। मेले में मेरी बुआ मिलीं। तब वे हमें अपने घर ले गईं। और हमें अपने हाथों से खाना खिलाया।

पानीपूरी

इकरा सिद्दीकी
छठवीं, मुस्कान संस्था
भोपाल, मध्य प्रदेश

चित्र: शुभम लखेरा

मुझे पसन्द है पानीपूरी
तुम्हें पसन्द है पानीपूरी
सबको पसन्द है पानीपूरी
सब खाते हैं पानीपूरी
मुझे लगती है खट्टी
सब पहनते हैं चड्डी
मुझे लगती है पानीपूरी
चटपटी खट्टी
मैं खाती हूँ खट्टी
वह पानीपूरी सबसे अच्छी
मुझे लगती है सबसे अच्छी





चाय पीने आया एक नया दोस्त

निधि सक्सेना
चित्र: निहारिका शेनॉय

नदी किनारे रहने वाली लारा और कारा अकेली रहती दिखतीं, पर उतनी अकेली थीं नहीं। घर की बाहरी दीवार पर फूलों वाली एक बेल चढ़ी थी। दरवाज़े पर फल से लदा एक पेड़ खड़ा था। देहरी पर गमले थे। एक रोज़ लारा देर तक जगी नहीं। कारा ने खूब जगाया। कारा को नदी किनारे जाना था, सो लारा को सोती छोड़कर जाना पड़ा। जाते-जाते कह गई, "लारा मेज़ पर केतली और केतली में गरमागरम चाय रखी है, जगते ही पी लेना।" लारा तो सो रही थी। सोते में उसने सुना नहीं, पर फूलों वाली बेल ने सुन लिया। कारा के जाते ही दीवार पर पड़ी बेल खड़ी हो गई और खिड़की तक चढ़ आई। खिड़की खुली थी। बेल ने भीतर झाँका। खिड़की के पास ही सजी मेज़ पर केतली और प्याला दो दोस्तों की तरह बैठे थे। केतली के मुँह से धुआँ निकल रहा था। धुएँ से खुशबू आ रही थी। बेल से रहा न गया। उसने केतली से प्याले में चाय डाली और पी गई। चाय सच में बहुत स्वाद थी, ना-ना करते पूरा प्याला खाली हो गया। बेल खिड़की से बाहर निकलकर फिर दीवार पर सो गई। लारा जगी, जम्हाई भरी, पर उसे कुछ न मिला। उसने देखा कि कमरे में चाय की खुशबू तो है, पर चाय नहीं है। प्याला खाली है। अगले दिन फिर लारा सो रही थी। कारा को नदी किनारे जाना था। कारा ने आज दो कप चाय बनाई और बेल से कहकर चली गई, "लारा जगे तो दोनों साथ बैठकर चाय पी लेना।"



खुले में शौच की समस्या

उमा सुधीर

तुम जानते ही होगे कि पिछले कुछ सालों से हमारे देश में 'स्वच्छ भारत अभियान' चल रहा है। अचानक से इस बात पर काफी ज़ोर दिया जाने लगा है कि सब दूर कितनी सफाई है।

इस अभियान के दो मुख्य फोकस हमें देखने को मिलते हैं – एक है कचरे को लेकर और दूसरा खुले में शौच को लेकर। भई, इनको लेकर अभी इतनी चिन्ता क्यों बढ़ गई? कचरा तो हम सदियों से यहाँ-वहाँ फेंक रहे हैं और आदिमानव तो खुले में शौच करते थे, नहीं? सारे जानवर भी तो खुले में ही जाते हैं – किसी शेर को टॉइलेट इस्तेमाल करते देखा है कभी?

तो चलो, पहले कचरे के बारे में थोड़ा सोचते हैं। क्या तुम्हें कुछ अन्दाज़ा है कि सौ साल पहले के कचरे में क्या-क्या हुआ करता था? और कितना कचरा हुआ करता था? लगभग 90 साल पहले पूरी दुनिया में सिर्फ 2 अरब इन्सान थे। आज हमारी आबादी 7.5 अरब के ऊपर है। अगर 1930 में दुनिया का हरेक इन्सान केला खाकर छिलका फेंकता तो जितना बड़ा ढेर बनता, आज उससे लगभग चार गुना बड़ा ढेर बनेगा। ऐसा तब होता जब हर इन्सान एक ही केला खाता। लेकिन आज एक और समस्या आ गई है।

आजकल लोग केला खाते भी नहीं – वे कुछ हरे या लाल रंग के पैकेट में चिप्स खरीदकर खाएँगे और प्लास्टिक की पन्नी नीचे फेंक देंगे। सौ साल पहले क्या, पचास साल पहले भी हमारे देश में होने वाला ज़्यादातर कचरा पड़े-पड़े सड़-गल जाता था। यानी वो बायोडीग्रेडबल होता था। आज हमारे घरों से निकलने वाले कचरे को देखोगे तो पाओगे कि आधे से भी कम कचरा डीग्रेडबल (फल और सब्ज़ी के छिलके-बीज या बचा हुआ खाना) होगा। आज जब हम सामान खरीदने जाते हैं तो काम की चीज़ों के साथ-साथ ढेर सारी पैकेजिंग भी खरीदते हैं। यह ज़्यादातर प्लास्टिक की होती है। पहले राशन लेने के लिए घरों में कपड़े की थैलियाँ होती थीं। आजकल चीनी, नमक, दाल, चावल, आटा सब कुछ प्लास्टिक की पन्नी में पैक होकर आता है। यह सारा कचरा हमारे घरों, स्कूलों, ऑफिस और दुकानों के बाहर हमें दिखता है। जब मैं किसी दूर-दराज़ के इलाके में जाती हूँ और सड़क किनारे मुझे कोई चिप्स की पन्नी या मिनेरल पानी की बोतल नहीं दिखती, तो मैं बहुत खुश होती हूँ। क्योंकि अब ये बहुत ही दुर्लभ अनुभव है। मोबाइल फोन और अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के कचरे के बारे में तो दस और लेख लिख सकते हैं, पर अभी के लिए हम उसे अनदेखा कर देते हैं।



तो कचरे की मात्रा की भी समस्या है और कचरे में जो पदार्थ हैं, उससे भी समस्या है। लेकिन मलमूत्र तो बायोडीग्रेडबल है। यानी इसको लेकर मात्रा की ही समस्या है। किसी छोटे गाँव में जहाँ सौ-एक लोग रहते हैं, वहाँ खुले में शौच करना वाकई में कोई समस्या नहीं है। पर किसी बड़े गाँव या दिल्ली जैसे शहर को ले लो। अब सफाई अभियान शुरू होने के बाद तो फर्क देखने को मिलता है। लेकिन उससे पहले जब ट्रेन में जाते थे तो दिल्ली पहुँचने से पहले पटरी के बगल में लोगों की भीड़ के कारण बदबू सही नहीं जाती थी। फिर भी, अगर मात्रा ज़्यादा है तो भी डीग्रेड तो हो जाएगा ना? तो प्रॉबलम क्या है?

प्रॉबलम है मल से फैलने वाली बीमारियों से। अब तुम पूछोगे किस तरह की बीमारियाँ? इसको उजागर करने के लिए मैं तुमको एक टेढे रास्ते से ले जाती हूँ। तुमको पता होगा कि भारत में बच्चों में कुपोषण की समस्या काफी व्यापक है। हमने देखा है कि गरीब परिवारों के कुपोषित बच्चों की वृद्धि कम होती है। माना जाता है कि इसका कारण खुले में शौच करने से होने वाली बीमारियाँ हैं। लेकिन अफ्रीका में उतने ही गरीब इलाकों में बच्चों की वृद्धि में यह कमी नहीं दिखती है। वहाँ भी खुले में शौच होता है। तो फर्क क्या है?

अफ्रीका के उन गरीब इलाकों में आबादी बहुत कम है। हमारे यहाँ की आबादी ही नहीं उसका घनत्व (density) भी बहुत ज़्यादा है। यानी कि उतनी ही जगह में अफ्रीका से कहीं ज़्यादा लोग हमारे देश के कई इलाकों में रहते हैं, खासकर शहरों में। जहाँ टॉइलेट नहीं होते हैं, उन जगहों में खुले में शौच का घनत्व भी बहुत ज़्यादा होता है। इन जगहों में मल द्वारा फैलने वाले रोग होते हैं, खासकर दस्त। ये आसानी से बहुत सारे लोगों में फैल जाते हैं। ऐसा अकसर मल के पानी के स्रोत में मिल जाने के कारण होता है। भारत में कई बच्चों को पेट की बीमारियाँ होती हैं, लगातार दस्त होते हैं जिसके कारण बच्चों का विकास पूरी तरह से हो नहीं पाता है। इससे न सिर्फ वे बीमार रहते हैं, बल्कि उनके खाने में जो पोषण है उसका पूरा फायदा भी नहीं उठा पाते हैं। कुपोषण का असर हमारे मस्तिष्क के विकास और सीखने पर भी होता है। कुल मिलाकर यह समझ में आता है कि जहाँ



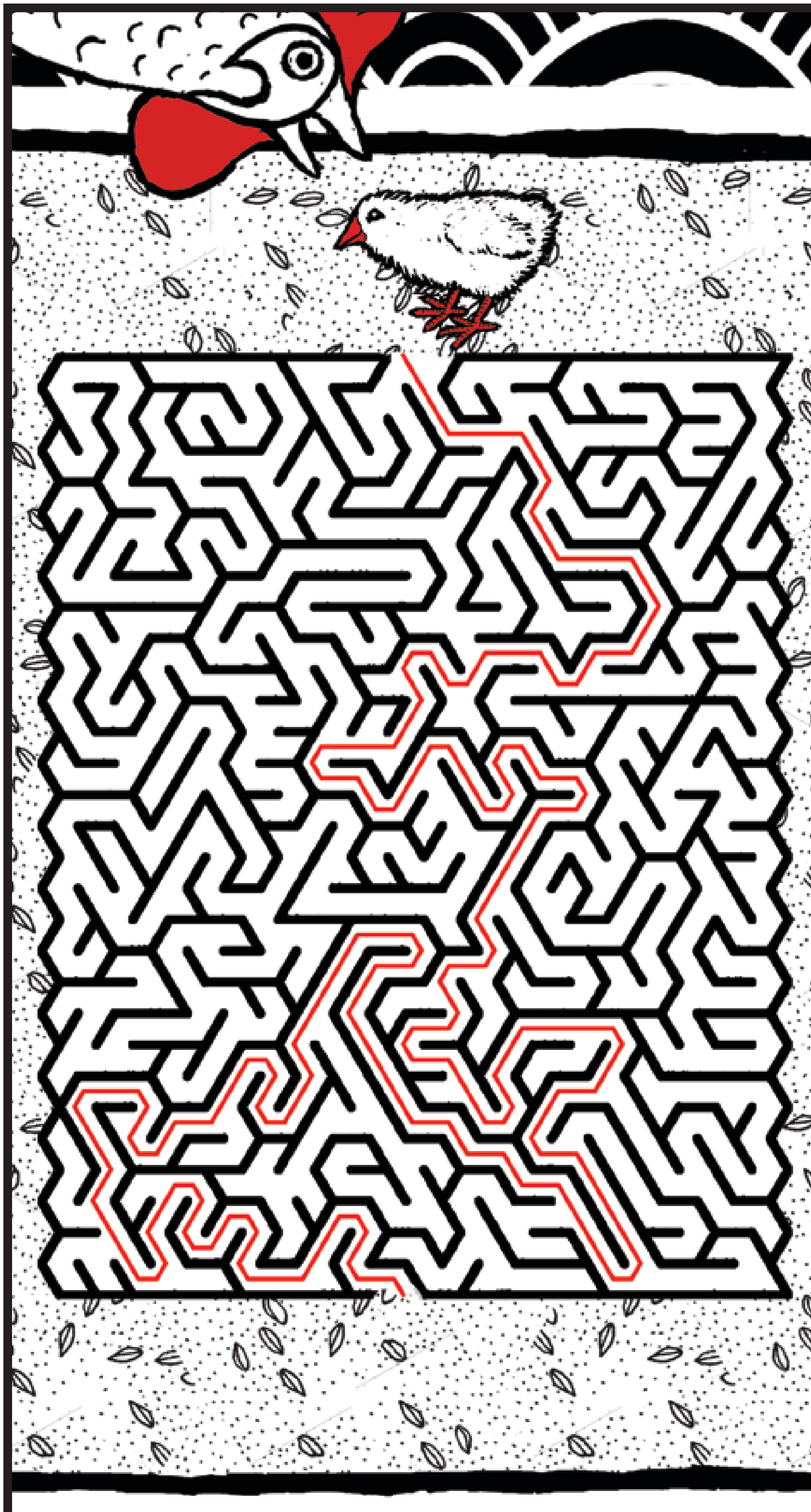




खुले में शौच का घनत्व ज़्यादा है, वहाँ हमारे बच्चों को काफी नुकसान पहुँच रहा है। इसीलिए खुले में शौच करना हमारे लिए चिन्ता की बात है।

खुले में शौच बन्द करने के लिए देशभर में जहाँ-जहाँ ज़रूरत हैं, वहाँ टॉइलेट बनाए जा रहे हैं। टॉइलेट बनाते समय हमें यह ध्यान होगा कि टॉइलेट के लिए जहाँ हम खोदते हैं या सुएज का पाइप लगाते हैं, वो जगह पानी के स्रोतों से दूर हो। टॉइलेट से अगर मल पीने के पानी में मिल जाता है, तो हमारी सारी मेहनत बरबाद हो जाएगी!

पानी को लेकर एक और समस्या है - तुम में से कई लोगों को पता होगा कि जब लोग खुले में शौच के लिए जाते हैं तो लोटा भर पानी लेकर जाते हैं और उतने पानी से काम हो जाता है। लेकिन टॉइलेट में इससे काफी ज़्यादा पानी इस्तेमाल होता है और टॉइलेट को साफ भी रखना होता है। वेस्टर्न टॉइलेट में तो और भी ज़्यादा पानी लगता है। और हम सब जानते हैं कि कितनी जगह पानी की समस्या होती है, खासकर गर्मी के मौसम में। पर पानी के बारे में कभी और बात करेंगे।



भूलभुलैया जवाब

किताबें कुछ कहती हैं...

पुस्तक समीक्षा

किताबों की दुनिया में जाने का एक रास्ता है किताबों की समीक्षाएँ। इस बार हमने कुछ बच्चों से कहा कि अपनी मनपसन्द किताबों के बारे में वे क्या सोचते हैं, हमें लिख भेजें। इनमें से कुछ हम यहाँ छाप रहे हैं।
तुमने भी, अगर कोई किताब या कोई कहानी-कविता वगैरह पढ़ी हो और उसके बारे में तुम कुछ कहना चाहो तो, हमें लिख भेजना। क्या अच्छा लगा और क्या अच्छा नहीं लगा... हम तुमसे सुनना चाहेंगे।

सिर का सालन

लेखक: मोहम्मद खदीरबाबू
समीक्षा : राधा धुर्वे, 15 वर्ष व मुस्कान खान 13 वर्ष, मुस्कान संस्था, भोपाल, मध्य प्रदेश



सिर का सालन कहानी मुझे बहुत अच्छी लगी क्योंकि जैसे इसमें सब्ज़ी के बारे में लिखा है वैसे ही हमारे घर में भी सिर का सालन बनता है। जिस दिन हमारे घर में बकरे के सिर की सब्ज़ी बनती है, उस दिन मैं सब्ज़ी बनने का इन्तज़ार करती हूँ। मेरी माँ भी बहुत लज़ीज़ सब्ज़ी बनाती हैं। जब मैं कहानी पढ़ रही थी तो मेरे मुँह में माँ की बनाई सब्ज़ी का स्वाद आ रहा था। जब एक बार कहानी पढ़नी शुरू की तो कहानी छोड़ने का मन ही नहीं हो रहा था। कहानी इतनी अच्छी लगी कि बार-बार पढ़ने का मन होता है। ऐसा लगा कि मेरे घर की ही कहानी है। हमारी बस्ती में माँस कम खाते हैं और सिर, पैर, मुण्डी और पचोनी हटन आदी बहुत खाते हैं। क्योंकि ये चीज़ें सस्ती मिलती हैं। और अमीर लोग सिर्फ डल्ली खाते हैं और खाल छोड़ देते हैं। इस कारण से ये हमें मिल जाती हैं और हम लोग इसको मज़े लेकर खाते हैं।

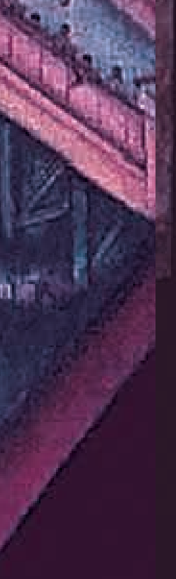
ऐसी कहानियाँ और भी आनी चाहिए ताकि हम तरह-तरह के सालनों के बारे में जान पाएँ। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी हैं जो ऐसे खानपान पर रोक-टोक लगाते हैं। लेकिन एक बात नहीं समझते कि हर इन्सान को अपनी पसन्द का खाना खाने का पूरा अधिकार है। इसलिए मेरा मानना है कि ऐसी कहानियाँ और आनी चाहिए जिसे लोग पढ़कर जानें, समझें व दूसरों को भी समझाएँ।





मूल तेलुगू कहानी: मोहम्मद खदीरबाबू
चित्र: गुलाम मोहम्मद शेख
अंग्रेजी से अनुवाद: सुशील जोशी

सिर का सालन



अम्मी चाहे हफ्ते में छह दिन और छह रात मांस पकाए मगर सिर्फ एक खाने में तरकारी बना दे, तो वे मुँह बनाएँगे, भात को थाली में इधर-उधर सरकाएँगे, थाली अम्मी की ओर धकेल देंगे और खाने को छूने तक से इन्कार कर देंगे।

कारण यह है कि मेरे अब्बा का जन्म ओंगोल ज़िले के एक तटवर्ती गाँव में हुआ था। मेरे दादा समुद्र के रास्ते मछलियाँ मद्रास भेजा करते थे। बचपन से ही अब्बा को रोज़ाना भरपेट मछली, झींगे, मांस और अण्डे मिलते थे, और वे ताकतवर और तन्दुरुस्त हो गए और मांस खाने के आदी हो गए।

मगर तमाम किस्म के मांस में उन्हें जो चीज़ सबसे ज़्यादा पसन्द है वह है भेड़े के सिर का सालन।

सच कहूँ तो भेड़े के शरीर का हर अंग निहायत स्वादिष्ट होता है: रानों का अपना स्वाद होता है; यदि पसलियों को इमली की पत्तियों के साथ पकाया जाए तो उनका स्वाद कुछ और ही होता है; दिल को यदि अलाव पर भूना जाए तो एक स्वाद होता है, और उसी को यदि मीठे सालन में पकाया जाए तो अलग ही स्वाद होता है; कलेजे का स्वाद अलग होता है; फेफड़ों का और भी अलग। और यदि आँतों को गोंगूरा के साथ पकाएँ, तो अद्‌भुत लगता है। मगर इन सबसे ऊपर है सिर का सालन।

जब भेड़े को काटा जाता है तो उसका मांस तीस लोगों में बँट सकता है। किन्तु सिर पर तो एक ही व्यक्ति दावा कर सकता है। इसीलिए जब भी मेरे अब्बा को सिर का सालन खाने की इच्छा होती तो उनकी यह इच्छा मेरे लिए सिरदर्द बन जाती।

कारण यह है कि...मेरे कस्बे में माब्बाशा नाम का एक आदमी है। वैसे तो वह सुनार है किन्तु वह इतना नहीं कमा पाता है कि गुज़ारा हो सके (बेचारा, उसकी केवल लड़कियाँ ही लड़कियाँ हैं)। तो थोड़ा अतिरिक्त पैसा कमाने के लिए वह हर इतवार को भेड़ा काटकर उसका मांस बेचता है।

वह सब कुछ आपकी नज़रों के सामने करता है – भेड़ा लाता है, उसे काटता है, उसकी खाल निकालता है, उसके मांस के टुकड़े करता है। इसलिए लोग खुले मांस बाज़ार की बजाय उससे खरीदना पसन्द करते हैं। और वैसे भी इतवार के दिन मांस बाज़ार में गहमा-गहमी होती है, इसलिए यह समझ ही नहीं आता कि मांस विक्रेता भेड़ का मांस बेच रहे हैं या भेड़े का।

मेरे अब्बा जानते हैं कि माब्बाशा के भेड़े की बहुत माँग रहती है। वे मुझे फिल्म देखने के लिए पैसे की रिश्वत देकर शनिवार शाम को ही माब्बाशा के घर पर सिर की बुकिंग करवाने भेज देते हैं।

मैं खुशी-खुशी सरपट माब्बाशा के घर पहुँचता हूँ। पतली टीन की चादर से बने उनके अगले दरवाज़े पर झुककर उनसे कहता हूँ, “सुनो माब्बाशा...कल मेरे अब्बा को सिर चाहिए। वे चाहते थे कि मैं आपको बता दूँ।” अपनी लाल रेशमी लुंगी को पेट तक उठाते हुए माब्बाशा जवाब देता है, “वह तो ठीक है। मगर ध्यान रखना, भेड़े का सिर उधारी में नहीं मिलता। अपने अब्बा से कह देना कि नक्द भुगतान करना पड़ेगा।”





चूँकि माब्बाशा गाँव के सब लोगों को जानता है, इसलिए सबको मांस उधार दे देता है। किन्तु सिर की माँग बहुत ज़्यादा होती है, इसलिए उसका नक्द पैसा माँगता है। आखिरकार दिन ढलते-ढलते गुल्लक में थोड़े कड़क नोट हों, तो अच्छा लगता है ना?

माब्बाशा की हाँ सुनकर मैं घर की ओर दौड़ लगाता हूँ, ताकि अब्बा को यह बात बताकर उनकी खुशी में भागीदार बन सकूँ। मगर मेरी अम्मी बीच में टपककर उनकी खुशी पर ठण्डा पानी फेर देती हैं। हालाँकि अम्मी बाकी सारी बातों में अब्बा से सहमत होती हैं किन्तु सिर के सालन के मामले में वे उनकी एक नहीं सुनना चाहतीं।

वे कहती हैं, “सिर ही क्यों...पैसे की बरबादी है और कितनी मेहनत लगती है। यदि तुम आँत लेकर आओ तो उसका बढ़िया मीठा सालन बनाकर मज़ा आ जाए।” उन्हें आँतों का सालन ज़्यादा पसन्द है।

अब्बा अम्मी की साड़ी का पल्लू पकड़कर मान मनौवल करने लगते हैं।

“ऐसा मत कहो, प्लीज़। मेरी खातिर, यदि तुम अपने ढंग से सिर का सालन बनाओगी, तो मैं भरपेट खा सकता हूँ मेरी जान।”

अब्बा की काफी मान मनौवल के बाद अम्मी मान जाती हैं।

मैं इतवार को सुबह जल्दी उठकर माब्बाशा के घर जाता हूँ, पैसे उसके मुँह पर फेंकता हूँ, सिर और टाँगें लेकर तार की टोकरी में रखकर घर पहुँच जाता हूँ। ताज़ा कटे मांस के टुकड़ों से टपकता पानी सड़क पर एक डिज़ाइन बनाता चलता है।

सिर्फ कुछ कहने के लिए अम्मी कहेंगी, “पूरा बड़ा भेड़ा लगता है।”

अम्मी की बात को काटने के लिए अब्बा कहेंगे, “बिलकुल नहीं, इस भेड़े को तो अभी सींग भी नहीं निकले हैं।”

“खैर, मेरा क्या जाता है,” अम्मी मुझसे कहेंगी, “कदीरा, उठो और पहले इसे धुआँ करवा लाओ।”

तब, टोकरी को सिर पर उठाकर मुझे वेंकटेश्वर थिएटर के पास लोहा भट्टे के मज़दूरों के पास जाना पड़ेगा। तब तक वहाँ मेरे जैसे कई बच्चे आ चुके होंगे जो सिर को धुआँ करवाने ही आए होंगे। हर भट्टे पर दो-दो तो होंगे।

जिस भट्टे पर मैं सिर को धुआँ करवाने जाता हूँ वहाँ दम्पति जिस ढंग से काम करते हैं उसे देखना अद्भुत होता है। पति गरम कोयलों के सामने बैठकर सिर को लोहे की एक छड़ में पिरोकर कोयलों के ऊपर घुमाता रहता है। पत्नी धमन के सामने बैठ धमन को चलाती रहती है और कोयले उठा-उठाकर पति को थमाती जाती है।

जब भेड़े के सिर के नए-नए बाल कोयले की आग से चटकने लगते हैं, तो भट्टे का पूरा कमरा प्यारी-सी गन्ध से भर जाता है। जब सिर अच्छी तरह धुआँड़ा हो जाता है, तो वह उसकी नाक और कानों को लोहे की लाल गरम छड़ से दागता है ताकि कोई कीड़े वगैरह न बचे रह जाएँ। इस बीच पत्नी खुरों को एक हथौड़े से ठोंकती है, नाखून हटाती है और खुरों की सारी दरारों को सफाई से दाग देती है। यह सारा काम करवाने के दो रुपए लगते हैं।

किन्तु धुआँड़े सिर को फोड़ने में इन सबसे ज़्यादा हुनर लगता है।



हालाँकि अम्मी इस फन में उतनी माहिर नहीं हैं, मगर उनकी बहन इसकी उस्ताद हैं। सिर के घर पहुँचने पर हमें मौसी से मनुहार करनी होती है कि वे आएँ। उन्हें घर लाकर, बढ़िया चाय पिलाते हैं तो वे सीमेंट के टब के सामने सिर को लेकर बैठ जाती हैं। हाथ में एक भोथरा चाकू होता है।

सबसे पहले वे चाकू से सिर को फोड़ती हैं, भेजे को अलग रख देती हैं, जबड़ों की हड्डियों को फेंक देती हैं, जीभ को साफ करती हैं और मांस के छोटे-छोटे टुकड़े काट लेती हैं – यह सब ऐसा लगता है मानो कशीदाकारी कर रही हैं।

सब कुछ हो जाने के बाद मांस के छोटे-बड़े टुकड़ों को एक बड़ी पतीली में रख दिया जाता है।

सौजन्यवश अम्मी मेरी मौसी से कहेंगी, “थोड़ी देर रुक क्यों नहीं जाती? थोड़ा सालन घर ले जाना।”

मौसी जानती हैं कि मेरी अम्मी कहें कुछ भी, किन्तु एक चम्मच सालन भी हाथ से जाने नहीं देंगी।

वे कहती हैं, “मुझे अब जाना पड़ेगा। यदि तुम सचमुच सालन भेजना चाहती हो, तो लड़के के हाथ भेज देना।”

“ठीक है बहन,” अम्मी जवाब देती हैं, और इन शब्दों को उसी पल याददाश्त में से पोंछ देती हैं।

बहन के जाने के बाद अम्मी पतीली को चूल्हे पर रखती हैं।

सालन ताज़ा नारियल, टमाटर, दालचीनी, अदरक-लहसुन के मसाले में पकने लगता है...तो रसोईघर में से अद्भुत खुशबू फैलने लगती है।

गन्ध को अपने अन्दर खींचते हुए अब्बा खुशी से डा डा डा गुनगुनाते कमरे में चहलकदमी करने लगते हैं।

रसोई में अम्मी पतीली को चूल्हे पर से हटाती हैं, देख लेती हैं कि सालन ठीक से पक गया है और नमक एकदम सही डला है; साथ ही वे कड़ाही को चूल्हे पर चढ़ा देती हैं। थोड़े से तेल और मसाले में वे भेजे को तलती हैं, जब तक कि वह कत्थई न हो जाए और तीन मिनट के अन्दर उसे उतार लेती हैं।

अब हमारे पास एक तरफ सिर का सालन है और दूसरी तरफ तला हुआ भेजा। जब दोनों तैयार हो जाते हैं, तो एक मिनट का भी इन्तज़ार न करके अम्मी चटाई बिछाकर परोसने को तैयार हो जाती हैं।



अब्बा तेज़ी-से अन्दर आते हैं और अपनी थाली लेकर बैठ जाते हैं; डा डा डा गुनगुनाना चलता रहता है। “मैंने सुबह नाश्ता नहीं खाया था, भूख से मरी जा रही हूँ,” कहते हुए अम्मी बैठ जाती हैं। दादी दहलीज़ पर बैठते हुए कहती हैं, “मुझे दो-चार मुट्ठी दे दो।” मैं, मेरा बड़ा भाई, मेरी बहन, छोटा भाई...उनके पीछे-पीछे कतार में लग जाते हैं।

गोल घेरे में बैठकर, भात और तले हुए भेजे में मिलाकर सिर का सालन खाते हुए जिसमें इतनी चर्बी है कि हाथों में चिपकता है – छोटे-छोटे काले टुकड़ों का लज़ीज़ ज़ायका – सुबह का सिरदर्द गायब हो जाता है और महसूस होता है जैसे यह दुनिया स्वर्ग है।





मेरा पन्ना



मेरी प्यारी दोस्त

आरम्भ रवि
पहली, द सृजन स्कूल
मॉडल टाउन, दिल्ली

मेरी प्यारी दोस्त है
उसका नाम है ज़ोया
उसने मुझको चुप करवाया
जब भी मैं रोया
ज़ोया बहुत भाती है मुझको
पसंद है खिलौने
और मेरा साथी मुझको

मेरी डायरी का एक पन्ना

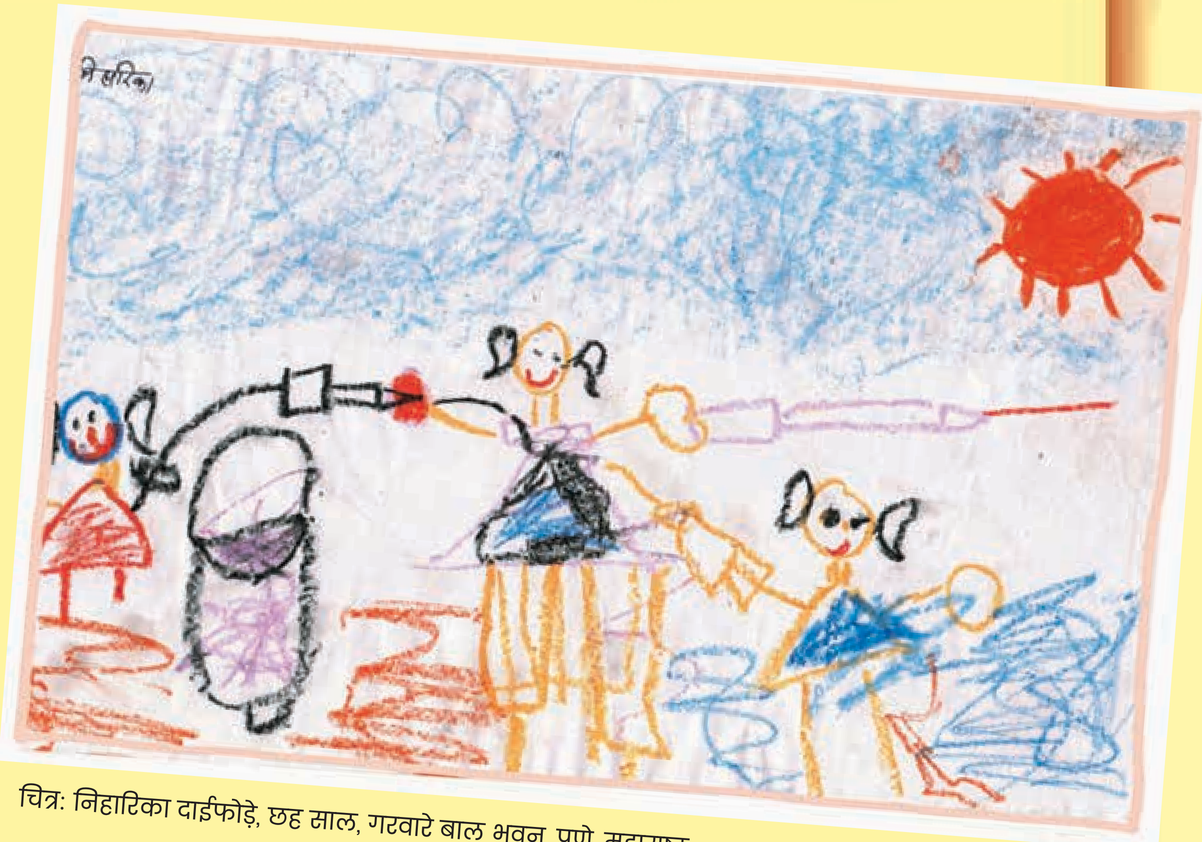
सजिता नायर

हैलो डायरी,

स्कूल में आज बहुत मस्ती करी। एक पीरियड तो पता नहीं चारू और मुझे क्या हो गया था। हम बस एक-दूसरे को देख हँसे ही जा रहे थे। पर, अगले ही पीरियड वाइस प्रिंसिपल सर कक्षा में आ गए। उन्होंने जैसे ही हमें हँसते हुए देखा, यह कहकर हमें डाँट लगा दी कि लड़कियों को इतना नहीं हँसना चाहिए। हम चुप हो गए। फिर उन्होंने पूरी क्लास को डायरी में लिखे स्कूल के नियम पढ़ने को बोला और चले गए। उनके जाते ही मैंने चारू की तरफ देखा और दीवार पर टँगे गाँधीजी को देखकर कहा "लेकिन गाँधीजी ने कहा है कि हँसना सेहत के लिए अच्छा होता है।" और हम फिर हँसने लग गए।

सुष्मिता आज पता नहीं क्यों स्कूल नहीं आई। वो होती तो और भी मज़ा आता।

झूलाघर में आज आंटी कहीं बाहर चली गई थीं तो हमने खूब मस्ती करी। हम



चित्र: निहारिका दाईफोड़े, छह साल, गरवारे बाल भवन, पुणे, महाराष्ट्र

लोग जब खेल रहे थे तभी ईशान भैया आए। उन्होंने मुझे अलग से बुलाकर अपने पास खड़ा किया। मेरी फ्रॉक ऊँची करी और चड्डी नीचे करके मुझे छूने लगे। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि वो ऐसा क्यों कर रहे थे। थोड़ी देर बाद उन्होंने मुझे वापिस चड्डी पहना दी। फिर बोला कि आंटी को नहीं बताना, वरना वो उन्हें बता देंगे कि हम कितनी मस्ती कर रहे थे। आंटी बहुत डाँटती हैं, तो अच्छा ही होगा अगर उन्हें नहीं पता चले। वैसे भी ऐश्वर्या ने मुझे बताया कि ईशान भैया सब के साथ ऐसा खेल खेलते हैं।

पता नहीं कैसा खेल था, अजीब-सा।

शाम को घर आकर चारू से पूछने वाली थी, लेकिन फिर अम्मा सुन लेतीं और गन्दी बच्ची कहकर मुझे डाँटने लगतीं। अम्मा आज वैसे भी पहले से ही गुस्सा थीं। पापा से लड़ाई जो हो गई थी।

अम्मा-पापा की लड़ाई और ईशान भैया का अजीब-सा खेल छोड़कर बाकी दिन काफी मज़ेदार था। अब कल बात करती हूँ तुमसे।

बाय!

इन्हीं गलियों में...

सुशील शुक्ल
चित्र: कनक शशि

मेरा दफ्तर जिस कॉलोनी में है उसमें मैं अकसर घूमता रहता हूँ। दो-तीन घण्टे काम के बाद लगता है कि एक चक्कर काट कर आया जाए। मई-जून के दो महीनों को छोड़ दो तो दिन में किसी भी वक्त मैं इस चक्कर के लिए निकल जाता हूँ। मौसम कोई भी हो अगर ज़रा-सी हवा चल रही हो तो दृश्य एकदम बदल जाता है। हरेक पेड़ की डालियाँ हवा से अलग तरह से हिलती हैं। हिलती डालियाँ, झूलते पत्ते देखना क्या होता है यह देखकर ही जाना जा सकता है। तरह-तरह की गन्धें आती चली जाती हैं। एक लहराते बड़े पेड़ को देखकर मन करता है उससे गले मिल जाऊँ। ऐसा तो आते-जाते इन्सानों को देखकर भी होता है। इसी गली के एक छोर पर मार्च के आखिरी हफ्ते में एक पेड़ पीले फूलों से लद जाता है। एक पत्ती नहीं दिखती। पीले फूलों के गुच्छे-गुच्छे दिखते हैं। एक व्यस्त सड़क के किनारे वह खड़ा रहता है। मैं उसे देखने कई बार उसके पास जाता हूँ। वहाँ की चाय की गुमठी पर बैठा रहता हूँ। चाय वाला चाय मुझसे बिना पूछे दे देता है। ज़्यादातर लोग इस पेड़ को बिना देखे गुज़र जाते हैं। एकाध कोई मोटरसाइकिल चलाते एक नज़र इस पेड़ को देख लेता है। इस एक क्षण वह सड़क से नज़र हटा लेता है। इस एक क्षण वह अपनी जान को दाँव पर लगाकर इस पेड़ को देखता है। इस एक क्षण के लिए दुनिया बहुत सुन्दर हो जाती है। यह एक क्षण मेरे पूरे दिन पर फैलकर उसे महकाता रहता है।

मार्च में ही आम पर एक साथ चार-पाँच रंगतों के पत्ते दिखते हैं। और बौरों से मटर के दाने बराबर अमिया बनती रहती हैं। बौरों से झूमे कितने ही कीड़े दिखते हैं। और यदि कोई और आवाज़ नहीं है तो कई बार एक झीनी भिन-भिन सुनाई देती है। इन्ही गलियों में कई अनजाने पेड़ हैं। वो बस नाम से अनजाने हैं। मैं उनसे इतना मिलता हूँ और सोचता हूँ कि इनके नाम जानूँगा। मगर उस पेड़ का नाम किसे पता होगा? कभी-कभी सोचता हूँ कि एक-एक पेड़ का अपना नाम होना चाहिए, जैसे हम इन्सानों का है। मुझे कभी दो आम के पेड़ एक-से नहीं लगे। इस बात को कहूँ तो एक अटपटा-सा वाक्य बनता है - सब आम के पेड़ आम के पेड़ नहीं होते।

घूमते-घूमते कितने ही लोगों से मुलाकात हो जाती है। कोई पता पूछ रहा होता है। फेरी वाले अकसर दिखते हैं। सर्दियों में कश्मीरी शॉल वाले पीठ पर, कन्धे पर बड़े गट्ठर टाँगे

घूमते रहते हैं। वे अलग-से दिख जाते हैं कि कश्मीरी हैं। वे इतनी सर्दियाँ झेलते हैं। हमारी थोड़ी-सी सर्दियों के लिए वे गरमाहट बचाकर लाते हैं। सिर्फ अपने देश का नक्शा मैंने कभी नहीं खरीदा। मेरे पास दुनिया का एक फटा-पुराना नक्शा है। एक बार मैंने नक्शे को मोड़ा। और कश्मीर वाले हिस्से को एकदम भोपाल के पास ला रखकर देखा। मेरे पास पूरे कश्मीर को पूरे भोपाल से गले लगाने का कोई और तरीका नहीं था।

कभी-कभी चक्कू-छुरियाँ तेज़ करने वाले भी मिल जाते हैं। एक दिन मैंने सोचा कि मैंने आज चालीस की उमर तक कितने कौर खाना खाया होगा? ज़्यादातर बार रोटी के टुकड़े पर सब्ज़ी का एक टुकड़ा रखा होगा। हर टुकड़े के लिए मैं एक बार इस आदमी का शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ। इस विचित्र और खूबसूरत दुनिया के बारे में सोचता हूँ कि जिसमें एक आदमी हमारी गलियों में घूमता रहता है - चक्कू-छुरियाँ तेज़ करा लो। गलियों के दोनों तरफ बेतरतीब घासों का एक संसार चलता है। तरह-तरह के छोटे-छोटे फूल। रंग-बिरंगे कीड़े। छलाँगे, लगाते रहते हैं। मैं उनमें से एक को हथेली पर रखकर उससे कहता हूँ कि इस पृथ्वी पर मैं भी उसका पड़ोसी हूँ। कि इस 19 मार्च 2019 को हम लोग मिले थे। इसे वहीं उस गली पर उसके नाम के साथ अपना नाम जोड़कर लिख देता हूँ।

इसी गली में एक मकान हैं। विशाल मकान। अगर ज़रूरत के हिसाब से मकान बना होगा तो इस परिवार में कोई दो सौ लोग होंगे। लेकिन वह अधबना पड़ा है। घासें, पेड़, झाड़-झंखाड़ उगे हुए हैं। छोटी-छोटी खुली जगहों से उसमें कुत्ते आते-जाते रहते हैं। कुछेक लोगों ने उसके सामने कचरा डाल दिया है। कई बार मैं सोचता हूँ कि एक इन्सान परिवार नहीं है, मगर हज़ारों-हज़ार जीवों ने इसे आबाद कर रखा है। इस घर से पृथ्वी को कोई नुकसान नहीं होगा। हर कॉलोनी में ऐसे कुछ घर यूँ छोड़ दिए जाएँ तो अच्छा रहे। सर्दियों में इस इलाके के कुत्ते अपने बच्चों को लेकर इसके भीतर रहने चले आते हैं। इस पूरी कॉलोनी में यही एक जगह होगी, जहाँ साँप खुशी से रहते होंगे। कभी-कभी यह सोचता हूँ कि इस घर वालों के साथ न जाने क्या हुआ होगा कि उन्हें घर अधबना छोड़ देना पड़ा।

इसी गली में एक पार्क है। इसमें एक साथ सेमल, छोटा कदम्ब, मुच्कुंड, गुलमोहर, नीम, बेर के पेड़ हैं। भीतर एक छोटी-सी टंकी है। उसकी टोंटी टूटी है। उससे थोड़ा-थोड़ा पानी टपकता रहता है। और इससे वह टंकी हमेशा भरी रहती है। कितनी चिड़ियाँ, कुत्ते यहाँ पानी पीते हैं। इसी में एक कुतिया के चार बच्चे डूब गए थे। यह पार्क ऑफिस के एकदम सामने है। कई बार ऑफिस में देर तक रुकना होता है। रात के दो बजे अचानक टिटहरी की आवाज़ से पार्क गूँज उठता है। मेरी नींद टूट जाती है। एक बार तो मैं टॉर्च लेकर पार्क के भीतर भी गया। बहुत देर तक उसे चिल्लाते सुनता रहा। सोचता रहा कि उसकी जगह कोई इन्सान होता, तो क्या तब भी मैं यूँ ही बैठा रहता। सुबह पूरे पार्क को गौर से देखा। एक कोने में कुछ झुरमुट थे। बाकी सारा पार्क साफ था। उसी झुरमुट में हलकी नमी थी। झुरमुट घने पेड़ों के नीचे था। यही एक जगह थी जहाँ वह रहती होगी। मैंने ज़्यादा पड़ताल नहीं की। दिन भर मुझे वह पार्क में दिखाई न पड़ी। अगली रात मैंने दो बजे का अलार्म लगाया। दो से तीन मैं चुपचाप छत पर बैठे पार्क में देखता रहा। दो टिटहरियाँ दिखीं। मस्त चाल से पार्क में घूम रही थीं। मुझे लगा चलो, सब ठीक है। टिटहरी के यहाँ इतनी असुरक्षित जगह रहने पर आश्चर्य भी हो रहा था। क्योंकि वहाँ अकसर मैंने कुत्तों को घूमते देखा था।

आज इस गली में घूम रहा था तो देखा पार्क के बीचोंबीच वही झुरमुट पड़ा है। कोने को साफ कर दिया गया था। उसकी सारी सूखी लकड़ियाँ, पत्ते, घासें, सारी बेतरतीबी हटाकर बीच में ले आई गई थी। मैंने पूछा, “भाई ये क्या किया...” उसने एक और सूखी डाल को ढेर में फेंकते हुए कहा – “परसों होली है।”

क्यों क्यों

स्वतंत्रता चाहिए। हमें अपनी ज़रूरतें पता होती हैं। इसलिए हमें उन्हें पूरा करने के लिए निर्णय लेने की स्वतंत्रता चाहिए।

प्रतिक्षा, छठवीं, ज़िला परिषद उच्च प्राथमिक स्कूल गवराला, चन्द्रपुर, महाराष्ट्र

बच्चों को अपना निर्णय लेने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, लेकिन हर चीज़ में नहीं। क्योंकि कभी-कभी हम मुश्किल में पड़ जाते हैं।

भगवती, सातवीं, अज़ीम प्रेमजी स्कूल, दिनेशपुर, उत्तराखण्ड

हर बच्चे को अपना निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। क्योंकि वह भी इस देश का हिस्सा है, और वह अपने निर्णय खुद लेगा ही। तो अच्छा है। नहीं तो किसी देश को कैसे पता चलेगा कि अपने देश का बच्चा क्या बनना चाहता है। और उसने अपनी ज़िन्दगी में कितनी पढ़ाई की है, किस-किस मोड़ से गुज़रा है और वो अपने लोगों और अपने देश के लोगों के बारे में क्या सोचता है।

एक बात - अगर बच्चों को अपने निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता नहीं मिलनी चाहिए तो किसे मिलनी चाहिए क्योंकि बच्चा ही तो बड़ा होकर कुछ बनता है।

पुष्पा, नौवीं, मुस्कान संस्था, भोपाल, मध्य प्रदेश

हाँ, मिलनी चाहिए। अपने लिए, अपने मन से किए गए काम से सुधार भी तो होगा। हम स्वयं जगह-जगह जाएँगे। सही-गलत की ज़िम्मेदारी भी हमारी होगी।

रबिना, नौवीं, राजकीय इण्टर कॉलेज, केवर्स पौड़ी, उत्तराखण्ड

मेरे मत से बच्चों को अपने निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं मिलनी चाहिए क्योंकि बच्चों को सही-गलत की समझ नहीं होती। उन्हें जो अच्छा लगता है वही सही भी लगता है। जबकि इसी कारण बच्चों के संग अपराध भी होते हैं। इसलिए बच्चों को माता-पिता के निर्णय के हिसाब से ही चलना चाहिए। स्वतंत्रता के चक्कर में वे मुसीबत में भी पड़ सकते हैं।

जिज्ञासा प्रजापति, पाँचवीं, प्राथमिक विद्यालय धुसाह 1, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश

नहीं मिलनी चाहिए क्योंकि अगर बचपन से ही अपना निर्णय स्वयं लेंगे तो बड़े होकर ज़िद्दी बन जाएँगे। उन्हें अपना निर्णय स्वयं लेकर अच्छा लगता है लेकिन औरों के लिए मुश्किल हो सकती है क्योंकि उनका ज़िद्दीपना पूरा नहीं किया जा सकता है।

शीतल, दसवीं, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय सिसैया, खटीमा, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड



चित्र: हिमांशु, छठवीं, मंज़िल संस्था, दिल्ली

बच्चों को अपने निर्णय स्वयं नहीं लेने चाहिए क्योंकि उनमें इतनी समझ नहीं होती कि वह स्वयं निर्णय ले सकें। माता-पिता को अपने बच्चों के साथ दोस्तों की तरह पेश आना चाहिए ताकि बच्चे उनको सारी ऐसी बात बता सकें जो वो बताने से डरते हों। अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो बच्चे आप से डरेंगे और गलती करने के बाद आप को नहीं बताएँगे। वे खुद ही निपटने की सोचेंगे और अपने निर्णय स्वयं लेंगे। उनके द्वारा लिया निर्णय आगे जाकर परेशानी खड़ा कर सकता है। माता-पिता को बच्चों के लिए निर्णय लेते समय उनसे बात करनी चाहिए। उनसे पूछना चाहिए कि वह इस निर्णय को लेकर खुश हैं या नहीं। इसलिए बच्चों को अपने निर्णय स्वयं नहीं लेने चाहिए, बल्कि माता-पिता की मदद से लेने चाहिए।

ईशु, आठवीं, विश्वास स्कूल, गुरुग्राम, हरयाणा

बच्चों को बहुत सारी आज़ादी देनी चाहिए क्योंकि बच्चे बड़े होते हैं, बस वो दिखते छोटे हैं। उनका दिमाग बहुत तेज़ होता है और उन्हें सब पता होता है। बड़ों को भी बच्चों से पूछकर निर्णय लेना चाहिए।

ऐश्वर्या, तीसरी, एस.डी.एम.सी स्कूल हॉज खास, दिल्ली

आज़ादी – इसके मायने हैं क्या?

अंजलि नरोना

स्कूल, राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर विधार्थियों व शिक्षकों के लिए पाठ्यचर्या, सामग्री व प्रणालियाँ विकसित करने का 35 साल से भी अधिक अनुभव है। कुछ सालों तक वह चकमक की सम्पादकीय समूह का हिस्सा भी रहीं। हाल ही में एकलव्य से सेवानिवृत हुई हैं।

सरोज बहनजी की क्लास थी। स्कूल में 15 अगस्त की तैयारियाँ चल रही थीं। बहनजी सामाजिक अध्ययन पढ़ाती थीं। वो सामाजिक अध्ययन को रोज़ की ज़िन्दगी से जोड़कर समझाती थीं। इसलिए सबा को बहनजी भी पसन्द थीं और सामाजिक अध्ययन भी।

तो बात शुरू हुई।

"हम 15 अगस्त को स्वतंत्रता दिवस क्यों मनाते हैं, पता है तुम्हें?" बहनजी ने पूछा।

खुसुर-पुसुर शुरू हो गई।

"भारत, 15 अगस्त को आज़ाद हुआ था।" बादामी ने पीछे से कहा।

"किस से आज़ाद हुआ और आज़ादी का क्या मतलब है?" बहनजी ने पूछा।

खुसुर-पुसुर के बाद फिर आवाज़ आई – "गाँधीजी ने अंग्रेज़ों को भगा दिया था!"

"अब हिन्दुस्तानी लोग खुद ही राज चलाते हैं।" कम्मो बोल उठी।

"अंग्रेज़ों को भगा दिया, हिन्दुस्तानी राज करते हैं – मतलब? अब राजा तो हैं नहीं?" बादामी बोल उठा!

सुनीता बहुत देर से हाथ उठा रही थी। बहनजी ने उसे भी बोलने का मौका दिया।

"हमने छठवीं में पढ़ा था कि अब हम लोग ही अपनी सरकार चुनते हैं और हम चुनाव भी लड़ सकते हैं।"

"बिलकुल सही," बहनजी ने कहा। "स्वतंत्रता दिवस का मतलब है - अंग्रेज़ों और राजाओं से आज़ादी। 15 अगस्त 1947 को अंग्रेज़ों ने भारत का शासन भारतीयों को सौंप दिया। स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने वालों ने तय किया कि हम राजा नहीं बनाएँगे, बल्कि कुछ लोगों का चुनाव करेंगे जो मिल-जुलकर निर्णय लेंगे। निर्णय लेने की प्रक्रिया क्या होगी यह सोचने और तय करने में यानी संविधान बनाने में दो-ढाई साल और लग गए। 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू हुआ जो हमें एक लोकतांत्रिक गणतंत्र बनाता है।"

"इस आज़ादी से हमें क्या फर्क पड़ा? हमें तो रोज़ सुबह-सुबह स्कूल आना पड़ता है, चाहे मन करे या न करे। घर पर काम भी करना पड़ता है। कब पढ़ें, क्या पढ़ें ये सभी कुछ तो आप बड़े ही तय करते हो, हमारी आज़ादी तो कुछ है नहीं!" सरस्वती बोल उठी।

बहनजी थोड़ा सोच में पड़ गईं। बच्चे बात तो सही कह रहे थे, पर आज़ादी देने में भी कई पेचीदगियाँ थीं।

"चलो, अपन दो काम करते हैं। पहला यह कि घर पर अपने माता-पिता और बड़े बुज़ुर्गों से दो बातें पूछना। एक तो यह कि उन्हें आज़ादी की लड़ाई के कुछ किस्से पता हैं क्या? और अपनी माँ से पूछना कि उन्हें किन चीज़ों की आज़ादी पहले नहीं थी और अब है, या पहले थी और अब नहीं है।"

"और दूसरा काम?" सबा पूछ पड़ी।

"दूसरा काम यह कि कल-परसों में हम इस पर बात करेंगे कि स्कूल में तुम लोगों को क्या-क्या आज़ादी है और तुम और क्या चाहते हो। फिर हम देखेंगे कि उनमें से हम क्या-क्या स्कूल में शामिल कर सकते हैं और कैसे?" बहनजी ने जवाब दिया।

अगले दिन कुछ बच्चे घर से पूछकर आए। बादामी ने बताया कि उसके दादा ने अपने नाना का किस्सा सुनाया कि कैसे उन्होंने अंग्रेज़ सरकार के खिलाफ बिरसा मुण्डा के साथ लड़ाई लड़ी थी। सबा ने बताया कि उसके परदादा नमक सत्याग्रह के समय जेल गए थे।

कुछ लड़कियों ने अपनी माँ से बात करी और उनकी बातें सबके सामने रखीं। जैसे शमीम ने बताया कि उसकी माँ मैट्रिक तक ही पढ़ी हैं, जबकि उनका एक भाई डॉक्टर और एक वकील है। उनके माता-पिता ने उनको आगे पढ़ने की आज़ादी नहीं दी। पर शादी के बाद, जब शमीम थोड़ी बड़ी हो गई, तो शमीम के अब्बा ने उन्हें बी.ए. और डी.एल.एड. करने दिया। तभी शमीम की मम्मी अब प्राइमरी स्कूल में टीचर हैं। घर के अन्दर उन्हें हिजाब नहीं पहनना पड़ता, पर स्कूल जाते वक्त पहनती हैं।

सुनीता ने बताया कि उसकी मम्मी को पाँचवीं के बाद पढ़ने नहीं दिया गया। जब उनकी शादी हुई, तब तक उनकी पढ़ने में रुचि नहीं रही। उन्हें सिलाई सीखने का बहुत मन था, पर घर से अनुमति नहीं मिली। इसलिए उन्होंने तय किया है कि सुनीता को कॉलेज भेजेंगी।

स्कूल में आज़ादी पर दिलचस्प बातचीत हुई। जो बातें निकलकर आईं, उन्हें बाल पंचायत की समितियों में चर्चा के लिए रखा गया। बाल पंचायत ने निर्णय लिया कि स्कूल का समय तो वही रहेगा, पर बच्चों को हर हफ्ते एक स्वतंत्र दिन मिलेगा। इसमें वे खुद तय करेंगे कि उनको क्या करना है। इसकी दो शर्तें भी थीं – पहली, उन्हें शनिवार को बताना होगा कि वह अगले हफ्ते का कौन-सा दिन अपना स्वतंत्र दिन चुन रहा/रही है और दूसरी यह कि उन्हें उस दिन की रपट अपनी कक्षा में देनी होगी। बहुत सारे बच्चों को यह लगा कि ये बहुत मुश्किल काम है। मज़ेदार बात यह हुई कि शुरू में पूरे स्कूल में केवल तीन छात्रों ने स्वतंत्र दिन चुना। पर जब बाकियों ने उनकी रपट सुनी तो धीरे-धीरे और बच्चे भी ऐसा करने लगे। निर्णय लेने की स्वतंत्रता के साथ-साथ ही निर्णय को लागू करने की ज़िम्मेदारी भी बच्चों को समझ में आने लगी।

बच्चों को स्वतंत्रता मिलनी चाहिए क्योंकि अपना फैसला खुद सुना सकते अपना ज़िन्दगी खुद जी सकें, किसी की मदद नहीं चाहिए अपनी ज़िन्दगी जैसे जीना चाहें, वैस जिएँ। और किसी की इजाज़त नहीं लेनी होगी। लड़कों से दोस्ती करें। बाहर जाकर काम करें, घर से निकलकर स्कूल जाएँ। ये बच्चों को स्वतंत्रता होनी चाहिए।

जन्नत, मुस्कान संस्था, भोपाल, मध्य प्रदेश

बिलकुल अपने निर्णय लेने की छूट होनी चाहिए। बच्चे ही तो कल घर-परिवार और समाज सँभालते हैं। तो उनकी तैयारी पहले से हो। गिरकर सँभलना खुद से ही होता है। करके सब सीख ही जाते हैं।

मानसी, दसवीं, राजकीय इण्टर कॉलेज, केवर्स पौड़ी, उत्तराखण्ड

बच्चों को आज़ादी थोड़ी-सी मिलनी चाहिए क्योंकि अगर बच्चों ने थोड़ी-सी शरारत करी है तो बहुत बड़ी प्रॉब्लम हो जाएगी। और मम्मी-पापा को थाने जाना पड़ेगा और उनको थाने में डाल देंगे। इसलिए उनको पूरी आज़ादी कभी भी नहीं मिलनी चाहिए।

सृष्टि, तीसरी, एस.डी.एम.सी स्कूल हॉज खास, दिल्ली

क्यों क्यों

कितनी स्वतंत्रता है बच्चों को?

निधि गुलाटी
दिल्ली विश्वविद्यालय, शिक्षा विभाग में शिक्षक व शोधकर्ता हैं।

क्या बच्चों को अपने निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए? और क्यों? यह मामला काफी पेचीदा है। इसका जवाब इस पर निर्भर है कि हम बचपन को कैसे देखते व परिभाषित करते हैं। बच्चे के लिए कौन-सी जगह वाजिब है और कौन-सी नहीं, उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं - यह समाज में प्रचलित धारणाएँ तय करती हैं। नीतियों के पीछे छिपी सोच और समझ भी इस विमर्श से परे नहीं हैं। क्या बचपन को एक ही श्रेणी के तहत समझा जा सकता है? हमारे समाज में अलग-अलग वर्ग हैं, और इन सामाजिक-आर्थिक वर्गों में बचपन की अलग-अलग सीमाएँ तय की गई हैं।

आधुनिक समय में बचपन के बारे में यह समझ व्यापक है कि बच्चों को कमाई वाले काम से और यौनिकता से दूर रखा जाना चाहिए। वयस्कों की दुनिया से बच्चों को दूर होना चाहिए, और साथ ही, उन्हें आर्थिक तौर पर वयस्कों पर निर्भर होना चाहिए। अकसर निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्ग के बच्चे या तो स्कूल के साथ-साथ, या फिर स्कूल छोड़कर, ऐसे काम करने लगते हैं जिससे परिवार की आय में भागीदारी कर सकें या अपने लिए कुछ पैसे कमा सकें। वे न तो वयस्कों से अलग रह पाते हैं, और न ही पूरी तरह से उन पर आश्रित होते हैं। इस वजह से निम्न आर्थिक वर्ग के बच्चों को मध्यम और उच्च आर्थिक वर्ग के बच्चों से अलग नज़रिए से देखा जाता है। उनका बचपन अतिसंवेदनशील माना जाता है।

कुछ बच्चे खुद के तय किए हुए नियमों के आधार पर ज़िन्दगी जीना चाहते हैं। अपने घर की स्थितियों से परेशान होकर वे घर छोड़ देते हैं, भाग जाते हैं, काम करने लगते हैं। वे जहाँ भी रहते हैं, वहाँ अपने सामाजिक सम्बन्ध खुद स्थापित करते हैं, चाहे उनमें कुछ उत्पीड़न ही क्यों ना हो। वे अपने वातावरण में दूसरे बच्चों और कुछ वयस्कों के साथ भी रिश्ता बनाते हैं। वे रिश्तों में नफा-नुकसान तय करना जानने लगते हैं। वे भविष्य के बारे में सोचते हैं और पैसा जमा करते हैं। कुछ रोज़गार सीखना चाहते हैं और अपना घर बसाना चाहते हैं। भारतीय रेल के सम्पर्क में आने वाले बच्चों के साथ हाल ही में हुए शोध में ये सारे पहलू सामने आए। परिवार से दूर रहने वाले बच्चे बदलती परिस्थितियों में अपनी उत्तरजीविता को सबसे बेहतर ढंग से उपयोग में लाने की कोशिश भी करते हैं।

एक तरह से कहा जाए तो निम्न आय वर्ग के बचपन को 'उद्धार' या 'बचाव' के खाके में रखकर परिभाषित किया जाता है। सरकारी, निजी व गैर-सरकारी संस्थाएँ, नागरिक समाज और व्यक्तिगत तौर पर बहुत-से लोग 'गरीब', 'सड़क पर रहने वाले', 'उत्पीड़ित', 'परिवार से दूर', 'भीख माँगने वाले' बच्चों का 'उद्धार' करना चाहते हैं, और इसके लिए काफी कोशिशें भी करते हैं। हाल ही में, इस श्रेणी को विस्तृत कर सरकारी स्कूलों में जाने वाले (अकसर शहर के सरकारी स्कूलों में नामांकित) बच्चों को भी इसमें शामिल कर लिया गया है। ये संस्थान कोशिश करते हैं कि 'बच्चों का बचपन लौटा' दिया जाए, उन्हें काम से दूर रखा जाए और वयस्कों की दुनिया से भी अलग रखा जाए। अहम सवाल यह है कि क्या इन कोशिशों में बच्चे की सहमति शामिल की जाती है? क्या बच्चे से बातचीत की जाती है? जो बच्चे अपने घर पर उत्पीड़न महसूस करते हैं और बुरे माहौल की वजह से घर-परिवार छोड़ देते हैं, क्या ये संस्थान उन बच्चों को उनके परिवार के पास वापस भेजने से पहले,

उनकी इच्छा जानने के प्रयास करते हैं? क्या उनके घर की स्थितियों को व्यापक सामाजिक ढाँचे में रखकर समझने की कोशिश की जाती है? ये सवाल अहम हैं। बच्चों की समस्याओं को सुलझाने के लिए, इन संस्थाओं को बच्चों की वास्तविक ज़रूरतों पर ध्यान देना चाहिए बनिस्पत इसके कि वे अपने कार्यक्षेत्र को बचाने, सुधारने और परिवार को पुनः बच्चे लौटाने का काम करें। अगर राज्य वाकई इन बच्चों का 'बचाव' करना चाहता है, तो निम्न आय वाले परिवारों को सामाजिक सहायता और सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए, जिससे अभिभावक अपनी और बच्चों की देखरेख कर पाएँ।

वैसे देखा जाए तो मध्यम और उच्च सामाजिक वर्ग के बच्चों पर भी अलग तरह के दबाव हैं। इसमें शामिल हैं - आधुनिक दुनिया में अपनी एक अलग पहचान बनाना, अलग शौक होना, अपने शौक को अपना काम बनाना। वे पढ़ाई के लिए कौन-से विषय चुनें, किससे मिलें, किससे नहीं, किस के साथ खेलें, कहाँ खेलें, कब पढ़ें - यह सभी निर्णय इन परिवारों में अकसर वयस्क लेते हैं। इन वर्गों में बच्चे माता-पिता का दबाव महसूस करते हैं, और कभी-कभी उनके खिलाफ विद्रोह भी करना चाहते हैं।

उच्च सामाजिक वर्ग में तो खेलने के अलग स्थान भी मॉल में बने हैं, जहाँ बच्चे पूरी तरह सुरक्षित व साफ-सुथरे वातावरण में वयस्कों की देखरेख में खेल सकते हैं। एक मायने में खेल का खुला, स्वच्छन्द और अव्यवस्थित स्वरूप, जिसमें वयस्कों का हस्तक्षेप न हो, बचपन को परिभाषित करता है। पर बच्चों को सुरक्षित रखने के नाम पर खेल का यह स्वच्छन्द स्वरूप उच्च वर्गों के बच्चों के लिए बिलकुल लुप्त ही हो गया है।

यह सब देखते हुए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हर सामाजिक वर्ग के बच्चे किसी न किसी वजह से अपने निर्णय स्वयं नहीं ले पाते। अब मसला है, क्या बच्चों को उनके निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए? इस निर्णय पर विमर्श बच्चों के साथ ही करना चाहिए। क्या कुछ ऐसे शोध, बातचीत, विमर्श किए जा सकते हैं, जहाँ बच्चे यह तय कर पाएँ कि क्या वे अपने बारे में कुछ निर्णय लेना चाहते हैं या नहीं? ऐसे कौन-से निर्णय हैं जिन्हें वे खुद लेना चाहते हैं? और क्यों? किस उम्र में वे यह भागीदारी चाहते हैं? बच्चे इस मुद्दे पर अपने सटीक विचार प्रस्तुत करेंगे, यह तो तय है।

क्यों क्यों

हमें निर्णय लेने का अधिकार होना चाहिए जिससे हमारे साथ कोई गलत व्यवहार न कर सके। हम बेखौफ अपनी बात सभी को बता सकें। डर नहीं होना चाहिए। हम भी स्वतंत्र हैं।

कल्पना कुमारी, आठ वर्ष, अपना स्कूल सम्राट सेंटर, कानपुर, उत्तर प्रदेश

हाँ बच्चों को निर्णय लेने चाहिए और इससे आगे बढ़कर बच्चों को मज़े आएँगे। इसलिए हमें ऐसे ही निर्णय लेने चाहिए।

अंशिका तिवारी, तीसरी, होली लाइट अकादमी, देवास, मध्य प्रदेश

हम कागज़ नहीं दिखाएँगे

विनता विश्वनाथन
चित्र: अनार्या



ये शब्द शाहीन बाग में बैठी एक बुज़ुर्ग महिला के हैं। अगर तुम शाहीन बाग जाओगे तो दिन हो या रात, तुम्हें महिलाओं और उनके बच्चों की भीड़ बैठी मिलेगी। आसपास नौजवान भी खड़े मिलेंगे। वे तुमसे पूछेंगे - “आपने खाना खाया? कुछ खा लीजिए।” एक छोटा मंच दिखेगा जिस पर तुम्हें कभी किसी का व्याख्यान, तो कभी कोई रैप या गाना सुनने को मिल जाएगा। दरअसल, यह भीड़ कई हफ्तो से जारी शान्तिपूर्ण विरोध-प्रदर्शन है।शाहीन बाग दिल्ली का एक इलाका है जहाँ 15 दिसम्बर की रात को 10 महिलाएँ अपने घर से निकलकर सड़क पर खड़ी हो गईं। वे जामिया मिल्लिया यूनिवर्सिटी में छात्र-छात्राओं पर हुई हिंसा के खिलाफ विरोध दर्ज करना चाहती थीं। कुछ ही समय में और कई महिलाएँ उनका साथ देने लगीं। उस रात से आज तक शाहीन बाग में लगातार महिलाएँ बैठी हुई हैं - बारी-बारी से, 2 डिग्री की ठण्ड में भी, अपने बच्चों को साथ लेकर!

इसी किस्म का विरोध-प्रदर्शन देश के कई शहरों में हो रहा है।





आसपास नौजवान खड़े मिलेंगे। पहले तुमसे पूछेंगे - "आपने खाना खाया, कुछ खा लीजिए?"

कौन नागरिक? कौन घुसपैठिया?

ये लोग किस चीज़ का विरोध कर रहे हैं इसे समझने कि लिए पहले असम चलते हैं। कई दशकों से असमिया लोग वहाँ बसे बंगालियों से परेशान हैं। बंगाली लोग कई वजहों से असम में आकर बसते रहें हैं - कभी अपने इलाके में हिंसा से बचने के लिए, तो कभी रोज़गार की तलाश में। असमिया लोगों को ऐसा लगता है कि उनकी ज़मीन व नौकरियाँ बंगाली ले रहे हैं और उनकी भाषा और संस्कृति को भी बंगालियों से खतरा है। बंगालियों की कई पीढ़ियाँ यहाँ पैदा हुई हैं लेकिन इन सब को आज भी घुसपैठिया माना जाता है।

5 साल पहले सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर असम में राष्ट्रीय नागरिक पंजी (NRC) को अपडेट करने की प्रक्रिया शुरू हुई ताकि गैर-नागरिक, खास कर गैर-कानूनी निवासियों को पहचाना जाए। यह प्रक्रिया 2019 में पूरी हुई। 3.3 करोड़ लोग इसमें शामिल हुए, जिनमें से लगभग 19 लाख का पंजीकरण नहीं हुआ। इनमें से ज़्यादातर लोग ज़रूरी कागज़ात जुटा नहीं पाए। अब इन लोगों को एक और मौका मिलेगा अपना पंजीकरण करवाने का। अगर पंजी में इनके नाम शामिल नहीं किए जाते हैं तो इनकी भारतीय नागरिकता खत्म करके इनको गैरकानूनी घुसपैठिया ठहराया जा सकता है। इस स्थिति में इन्हें अपने घर-परिवार से अलग करके डिटेन्शन कैम्प में रखा जा सकता है। बहुत सारे लोगों के साथ ऐसा हुआ भी है। कैम्प में कैद लोगों का आगे क्या होगा, यह कोर्ट तय करेगी। इनमें सिर्फ बंगाली नहीं हैं, असमिया भी शामिल हैं।



इसी बीच 11 दिसम्बर 2019 को नागरिकता संशोधन अधिनियम (CAA) बना। इसके तहत अगर तुम अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश के हिन्दू, सिख, ईसाई, जैन, पारसी या बौद्ध धर्म के मानने वाले हो और तुम 31 दिसम्बर 2014 से पहले भारत आए हो, तो तुम्हें गैर-कानूनी प्रवासी नहीं माना जाएगा। इससे तुम्हारे भारतीय नागरिक बनने में आसानी होगी। लेकिन अगर तुम इन्हीं देशों से आए मुसलमान हो तो तुम्हें गैर-कानूनी प्रवासी ही माना जाएगा और सरकार तुम्हारे खिलाफ कार्यवाही करेगी।

असम में लोग इस कानून से नाराज़ हैं क्योंकि वहाँ जिन 19 लाख लोगों का पंजीकरण नहीं हो पाया, उनमें मुसलमान और हिन्दू दोनों शामिल हैं। अब असम के लोगों को लग रहा है कि हिन्दू बंगाली इस संशोधन का फायदा उठा कर वहीं रहेंगे।

इस संशोधन ने असमिया और बंगालियों दोनों को गुस्सा दिलाया है। असमिया तो चाहते हैं कि हिन्दू हों या मुसलमान, सभी बंगालियों को प्रदेश से बाहर कर दिया जाए। और पीढ़ियों से रह रहे बंगाली जिनको गैर-कानूनी ठहराया जा सकता है, यह समझ नहीं पा रहे हैं कि सिर्फ हिन्दुओं को क्यों नागरिकता का हक दिया जा रहा है। हिन्दू बंगालियों को भी गुस्सा है कि पीढ़ियों से भारत में रहने के बावजूद कागज़ात न होने के कारण गैरकानूनी घुसपैठिये ही कहलाएँगे।

देशभर में नागरिक पंजीकरण

यह तो थी असम की कहानी। अब NRC को पूरे देश में लागू करने की बात हो रही है। प्रस्ताव है कि यह इसी साल हो जाए। वैसे तो किसी देश में यह पता लगाना कि कितने नागरिक हैं और कितने गैर-नागरिक अपनेआप में दिक्कत वाली बात नहीं है। लेकिन हमारे देश में कई लोगों के पास किसी भी किस्म के कागज़ात नहीं हैं, खास कर गरीबों और निरक्षर लोगों के पास। NRC की प्रक्रिया के लिए कागज़ात जुटाने में लोगों को बहुत परेशानी होगी - समय जाएगा, पैसे खर्च होंगे, कर्ज़ा बढ़ेगा सो अलग। यह निश्चित है कि पंजीकरण के बाद लाखों ऐसे लोग होंगे जो नागरिक होते हुए भी अपनी नागरिकता साबित नहीं कर पाएँगे। ये सब हम असम की प्रक्रिया से जान गए हैं। इसलिए NRC के बारे में सुनते ही लोग काफी डर जाते हैं।

इन्हीं कारणों से CAA-NRC और इनसे जुड़े NPR (राष्ट्रीय जनसंख्या पंजी) के खिलाफ लोगों का विरोध है। साथ में लोगों का यह भी मानना है कि जिस तरह से CAA में धर्म के आधार पर भेदभाव किया गया है, वह हमारे संवैधानिक मूल्यों के खिलाफ है। यही लोग कह रहे हैं कि वे इस प्रक्रिया में शामिल नहीं होंगे, कागज़ नहीं दिखाएँगे।



सरकार क्या कहती है

सरकार का कहना है कि लोगों को चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है। यह प्रक्रिया सिर्फ घुसपैठियों को चिन्हित करने की कोशिश है, जो देश के हित में है। CAA के पीछे तर्क है कि जिन तीन देशों की बात हो रही है वहाँ मुसलमान बहुसंख्या में हैं और अन्य धर्म के लोगों को प्रताड़ित किया जा रहा है। इसलिए मुसलमानों को छोड़कर वहाँ के अन्य धर्म के लोगों को भारत में पनाह देना जायज़ है। हालाँकि इन देशों में बहुत सारे मुसलमानों को भी प्रताड़ित किया जाता है। साथ ही, दूसरे पड़ोसी देशों में भी, जिनका इस कानून में जिक्र नहीं है, अल्पसंख्यकों को प्रताड़ित किया गया है।

बहुत लोग इस मुद्दे के समर्थन में हैं और बहुत से इसके विरोध में। खूब बहस हो रही है - सोशल मीडिया पर, घरों, विश्वविद्यालयों, पत्रिकाओं, सड़कों, चाय की गुमटियों और कोर्ट में भी। नतीजा क्या होगा इसका पता नहीं। फिलहाल तो शाहीन बाग की औरतें अपनी जगह पर बैठी हुई हैं!

दिसम्बर की चित्र पहेली का जवाब

1कु	चि	2पु	ड़ी		3लँ		4बि	न्दु
र		लि			5गो	रि	ल्ला	
सी		6स	7जा	व	ट			8द
	9मं		दू			10स्पी	क	र
11ना	च		12ग	13ज	रा			बा
ट		14बै	र	ल		15ति	को	न
16क	मा	न		त		त		
		र		17 रं	18गो	ली		19सा
20भी	ड़		21मो	ग	ली		22घ	ड़ी

सुडोकू-26 का जवाब

9	7	2	1	5	6	4	3	8
6	4	8	3	9	2	5	7	1
1	5	3	8	4	7	2	6	9
7	2	9	6	1	5	3	8	4
8	3	5	4	7	9	6	1	2
4	6	1	2	8	3	7	9	5
5	1	4	7	3	8	9	2	6
2	8	7	9	6	4	1	5	3
3	9	6	5	2	1	8	4	7



एक सुबह

शशि सबलोक
चित्र: हबीब अली

सड़क भरी पड़ी थी। पैट्रोल भरवाने जा रहे लोगों से, पैट्रोल भरवाकर आ रहे लोगों से। बैंकों में पैसा, चैक जमा करने जा रहे लोगों से, चैक भुनाकर पैसा ला रहे लोगों से। दफ्तर जा रहे लोगों से, दुकानें खोलने जा रहे लोगों से। पर कइयों के पास जाने को न तो दफ्तर था, न दुकान, न घर। वो इस 'भीड़' में शामिल होने की कोशिश में भीड़ हुए जा रहे थे।

वो इन सब के बीच सड़क के डिवाइडर पर चली जा रही थी। मई अभी आई ही थी। पर बीते महीने की बारह बजे की धूप मानो सुबह-सुबह ही चली आई थी। धूप से बचती हुई वो जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा रही थी। डिवाइडर पर पेड़ों की कतारें थीं। वो हर पेड़ को छूती हुई जा रही थी कि अचानक उसके पैर से कुछ टकराया। खन्न-सी आवाज़ हुई।

उसका पैर एक मुड़े-तुड़े एल्युमीनियम के कटोरे से टकराया। वो चौंक गई। उसके पैर वहीं जमे रह गए। वहाँ एक आदमी था। काला-बदबूदार। चिथड़ों में लिपटा। भरी गर्मी में जगह-जगह से फटा स्वेटर पहने। गले में तार-तार हुआ मफलर लटकाए। चीकट बालों की लम्बी लटें उसके कन्धों पर फैली हुई थीं। बगल में उसकी पोटली रखी थी। उसमें से कुछ मैले-कुचैले, फटे कागज़ और कपड़े झाँक रहे थे। वो उकड़ू बैठा था। उसने अपने दोनों हाथों में एक काले, बीमार कुत्ते का मुँह थाम रखा था और उसे चूमे जा रहा था। कुत्ता खड़ा था। उसकी पूँछ ज़ोर-ज़ोर से हिल रही थी।

लड़की को यूँ खड़ा देख, वहाँ भीड़ जमा होती जा रही थी।

"पागल है..."

"भगाओ साले को, गन्दगी मचा रखी है।"

"नगर निगम को फोन करो, ले जाए दोनों कुत्तों को..."

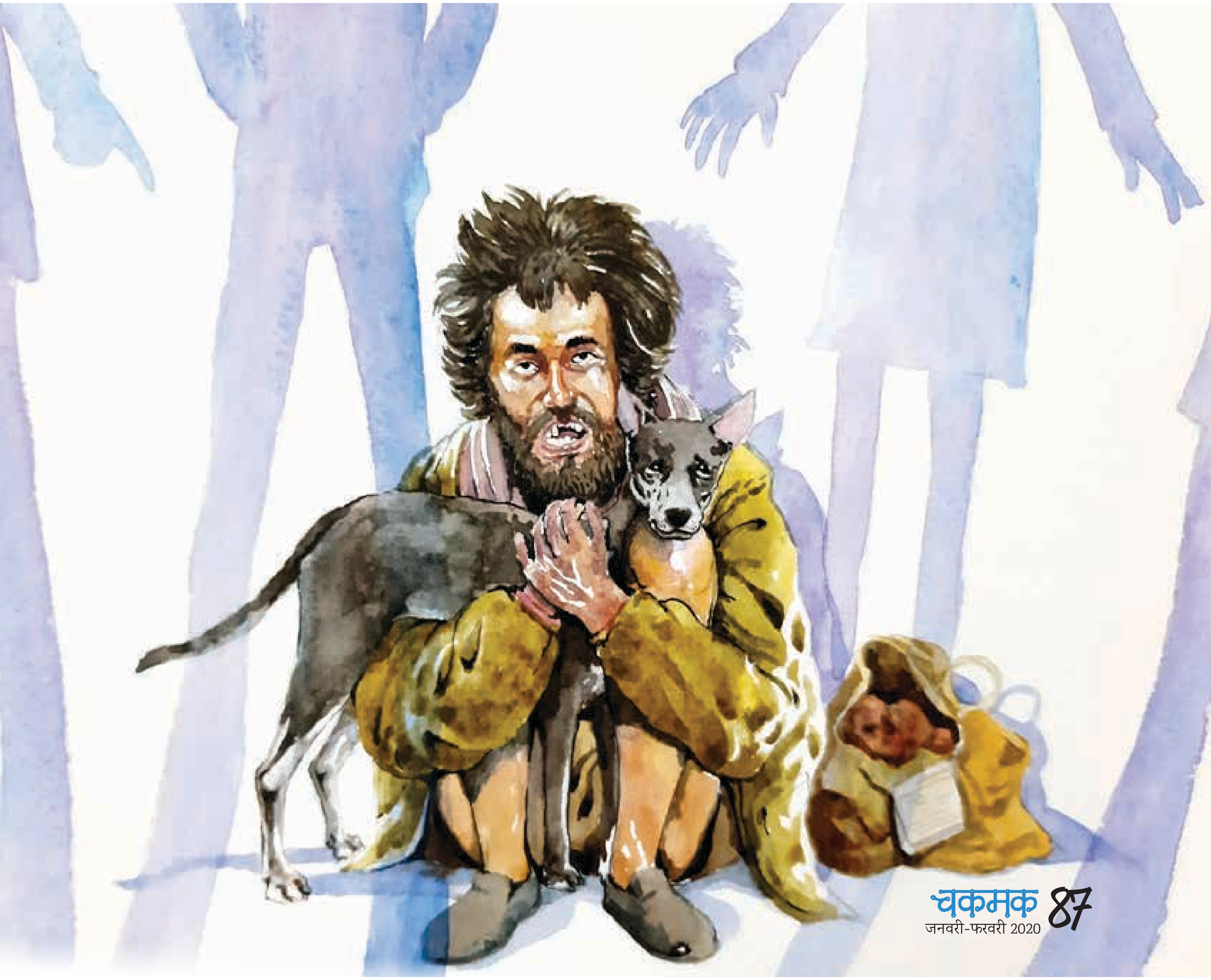
"पागल भी प्यार करने लगे हैं..."

भीड़ हँसने लगी। भीड़ को देख और भीड़ बढ़ने लगी। अचानक उसका चूमना रुक गया। कुत्ते की पूँछ भी रुक गई। उसने कुत्ते के मुँह को छोड़ा और अपना सिर उठाया। अपनी लाल-पनीली, गहरी, कीचड़ भरी शान्त आँखों से उसने भीड़ को देखा। फिर लड़की को देखता रहा। लड़की का मन पनीला हो गया। वो कुछ देर एक-दूसरे को यूँ ही देखते रहे। फिर लड़की झटके-से भीड़ से बाहर निकल गई।

उस आदमी के काले-मोटे, भद्दे होंठ फैल गए। उसने अपने ढीले पड़ गए हाथों से फिर से कुत्ते के मुँह को थाम लिया। बहुत प्यार से, बहुत ख्याल से। और फिर से उसे चूमने लगा। कुत्ते की पूँछ फिर-से तेज़-तेज़ हिलने लगी। धीरे-धीरे भीड़ की दिलचस्पी कम होने लगी। या उन्हें अपने ज़रूरी काम याद आ गए होंगे।

"चलो भई, यहाँ क्या खड़े होना। पागलों का क्या भरोसा..."

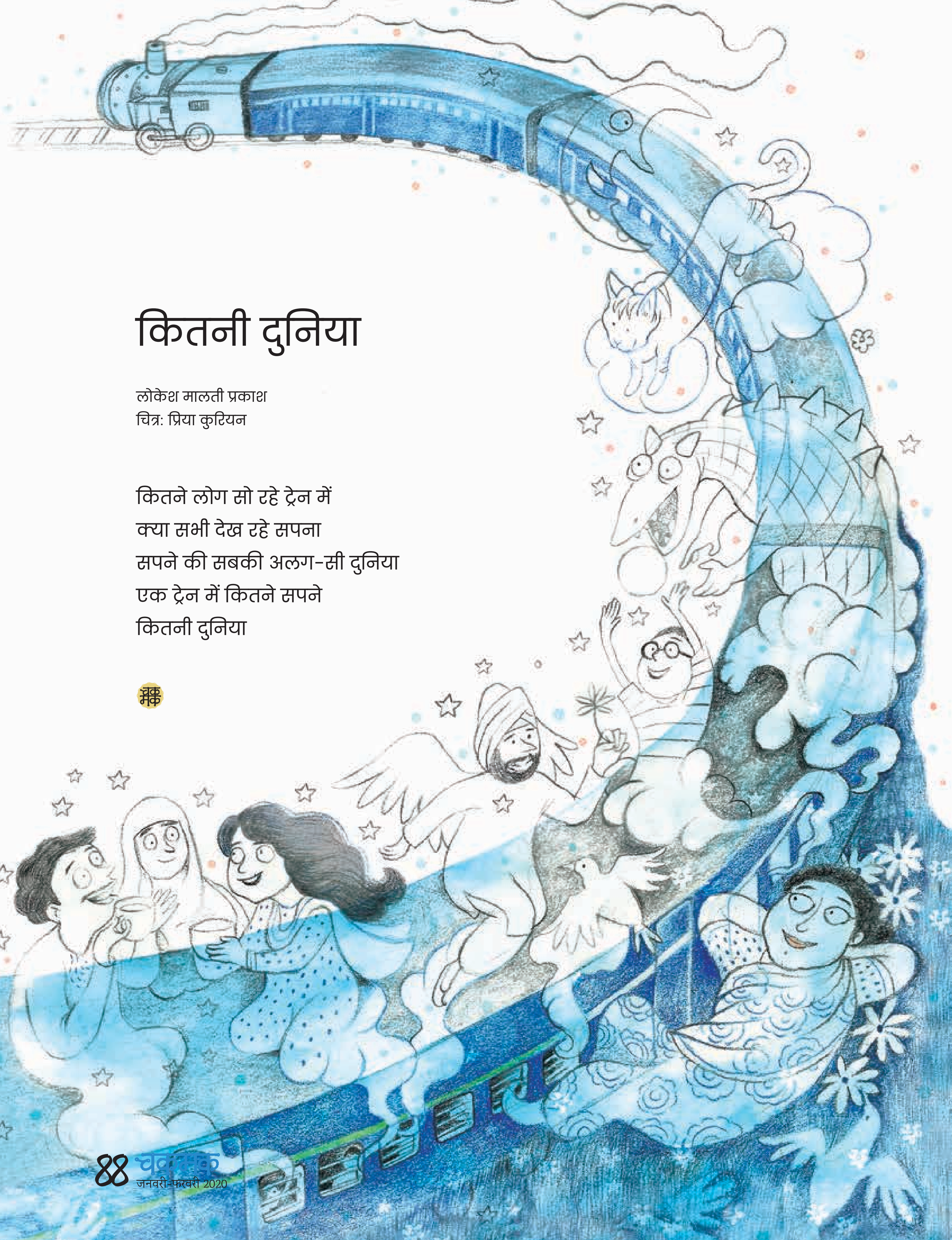
भीड़ छँटने लगी थी। लड़की ने दूर से मुड़कर देखा। आदमी ने कुत्ते को अपनी बाँहों में भर लिया था। और कुत्ता उसके मैल सने हाथों को चाटे जा रहा था। लड़की को लगा वो दुनिया का सबसे खूबसूरत नज़ारा देख रही है।



कितनी दुनिया

लोकेश मालती प्रकाश
चित्र: प्रिया कुरियन

कितने लोग सो रहे ट्रेन में
क्या सभी देख रहे सपना
सपने की सबकी अलग-सी दुनिया
एक ट्रेन में कितने सपने
कितनी दुनिया



तुम भी जानो

एक तारे की मौत



रात को आसमान में चमकते सबसे चमकीले तारों में से एक है - बीटलजूस या आर्द्रा तारा। यह कालपुरुष (Orion) तारामण्डल का एक तारा है। हमारे सूरज से 10-20 गुना बड़ा यह तारा एक युवा तारा है। इसकी उम्र कुछ 80 लाख साल है।

लगभग 700 साल पहले इसकी रोशनी कम होने लगी। चूँकि यह पृथ्वी से काफी दूर है, यह धीमी होती हुई रोशनी हम तक अब पहुँच रही है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह तारा मर रहा है। यह अगले साल भी मर सकता है और इसे 1 लाख साल भी लग सकते हैं। यह तब तक जलता रहेगा जब तक इसमें ईंधन होगा। फिर इसका विस्फोट होगा और इसके भारी तत्व अन्तरिक्ष में बिखर जाएँगे। जब ऐसा होगा तो दिन के आकाश में यह चाँद की तरह सफेद दिखेगा।

एक ऐसी किताब जिसे आज तक कोई पढ़ नहीं पाया



लोग किताबें लिखते हैं ताकि दूसरे उन्हें पढ़ें। पढ़कर पसन्द करें तो और भी बढ़िया। लेकिन कोई ऐसी किताब क्यों लिखेगा जिसे आज तक कोई पढ़ नहीं पाया है? हमें न तो इसका शीर्षक पता है, और ना ही लेखक। जाँच से समझ में आता है कि यह लगभग 600 साल पुरानी है और शायद इटली में लिखी गई थी। जिस व्यक्ति ने 1912 में इसे खरीदा, उसके नाम के आधार पर ही इसे 'वॉयनिक मैनुस्क्रिप्ट' नाम दिया गया।

इसके बाद कई लोगों ने इसका अध्ययन किया है। यह दाईं से बाईं ओर लिखी गई है। लेकिन किसी ऐसी भाषा में नहीं है जिसकी हमें कोई जानकारी है। इसे कोड या किसी रहस्यमयी भाषा में लिखा गया है। कई लोगों ने इसको क्रैक करने की कोशिश की है। चित्रों से अनुमान लगाया गया है कि यह मेडिकल की कोई किताब हो सकती है। लेकिन पता नहीं इसके लेखक ने इसमें क्या लिखा है और क्यों इसे उस ज़माने की आम भाषाओं में नहीं लिखा।

माथापच्ची

1.

3 को चार बार इस्तेमाल करके 34 लाना है। कैसे करोगे? तुम जोड़-घटाव, गुणा-भाग के चिन्ह इस्तेमाल कर सकते हो।

2.

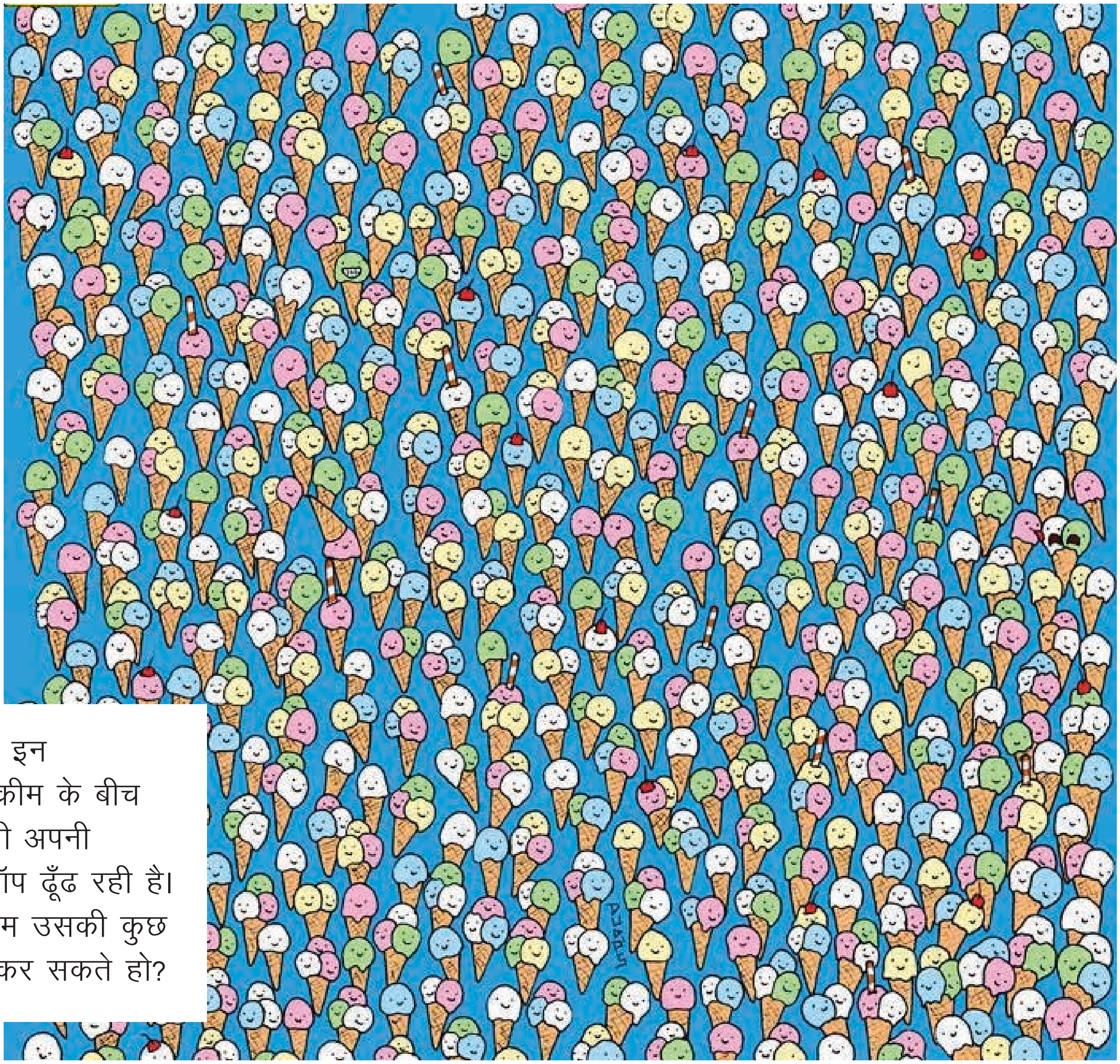
एक बूढ़े बाबा 1 बच्ची और 1 मुर्गी लेकर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक आदमी मिला। उसने बाबा से 3 सवाल पूछे।

बाबा आपकी उमर कितनी है?

यह बच्ची आपकी कौन है?

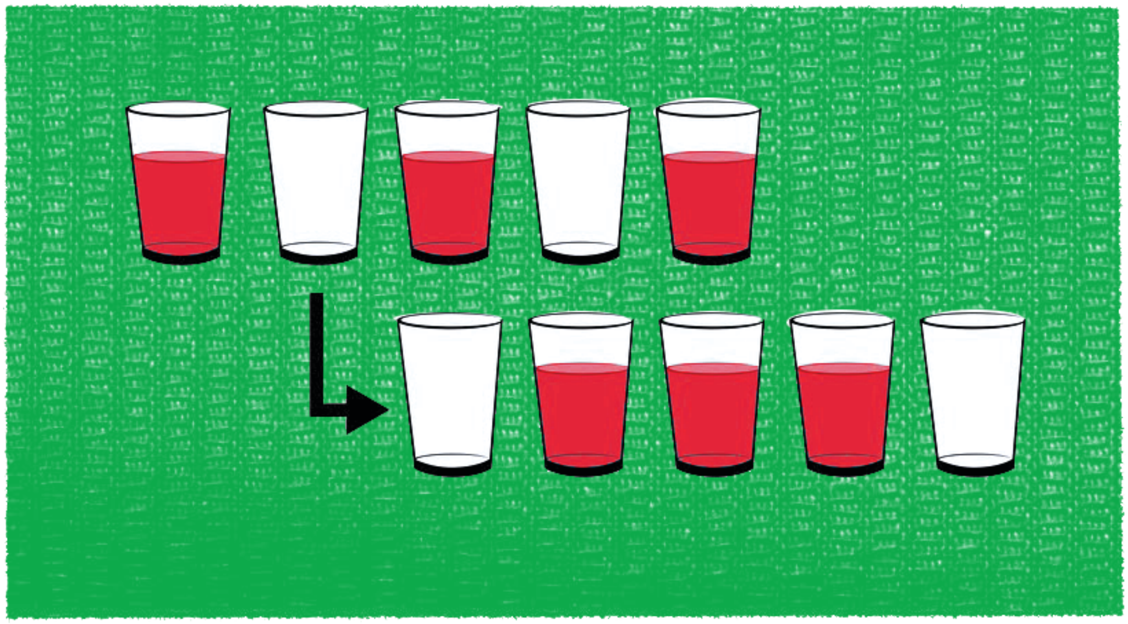
इस मुर्गी की कीमत कितनी है?

बाबा ने सिर्फ 1 शब्द बोला और आदमी को तीनों सवालों का जवाब मिल गया। बताओ, उन्होंने कौन-सा शब्द बोला होगा?



3.

एलीना इन आइसक्रीम के बीच में छिपी अपनी लॉलीपॉप ढूँढ रही है। क्या तुम उसकी कुछ मदद कर सकते हो?



4.

क्या तुम केवल एक गिलास को इधर-उधर करके पहली पंक्ति के गिलासों को दूसरी पंक्ति में दिखाए तरीके से रख सकते हो?



5.

शहद से भरी हुई एक बोतल का वज़न 1.5 किलोग्राम है। जब बोतल आधी भरी थी तब उसका वजन 900 ग्राम था। क्या तुम बता सकते हो कि शहद की उस खाली बोतल का वज़न कितना था?

6.

ज़ोया और अमन अलग-अलग दिनों पर झूठ बोलते हैं। ज़ोया शुक्रवार, शनिवार और इतवार को झूठ बोलती है और बाकी के दिन सच बोलती है। अमन मंगलवार, बुधवार और गुरुवार को झूठ बोलता है और बाकी के दिन सच। ऐसा कौन-सा दिन है जब दोनों यह कह सकते हैं कि कल मैं झूठ बोलूँगा?

फटाफट बताओ

बाल नोचे, कपड़े फाड़े मोती लिए उतार
उत्तर बतलाने के लिए क्या हो तुम तैयार

(ाड्डुभ)

उलटा करके रंग भरूँ,
सीधे में मैं फल हूँ

(कृाज)

चार पाँव पर चल न पाए,
चलते को भी वह बैठाए

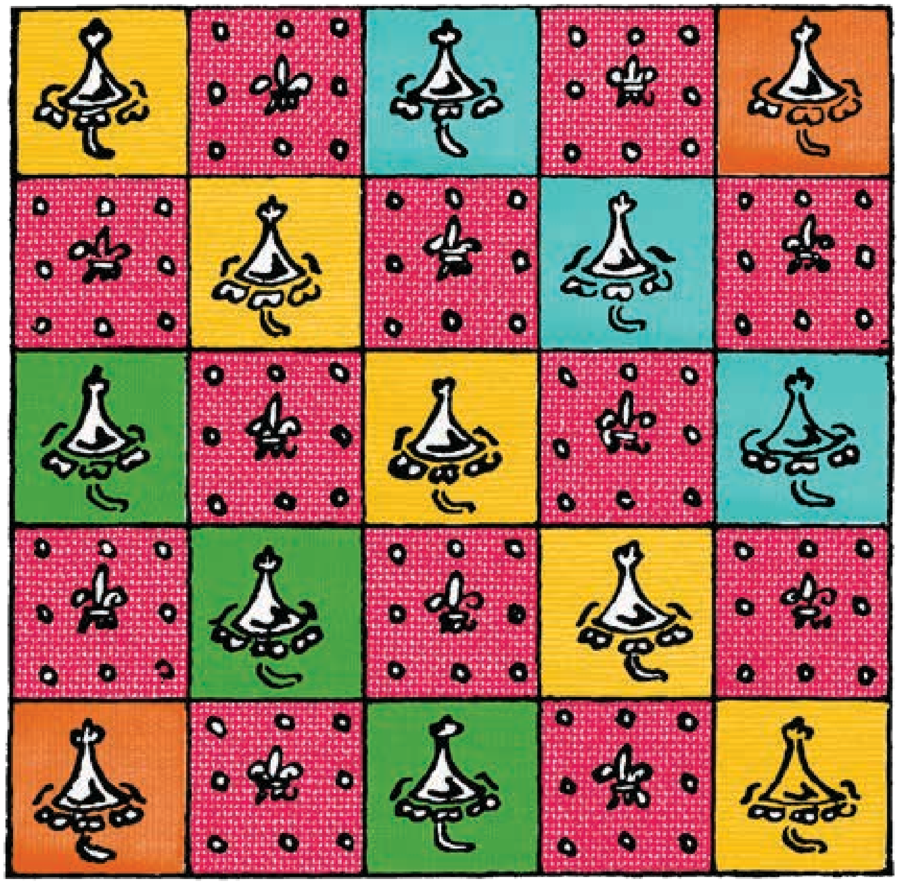
(ीभ्कृ)

दो अक्षर की हूँ मैं बहना,
उल्टा-सीधा एक ही रहना

(िभि)

7.

कौन-सी चीज़ है जो तुम्हारे सोते ही नीचे गिर जाती है और तुम्हारे उठते ही वापिस ऊपर उठ जाती है?



8.

हाना के पास बेल-बूटियों वाला एक चौकोर कपड़ा है। वह इसे 4 भागों में इस तरह काटना चाहती है कि दो भागों को मिलाकर वह एक चौकोर कुशन कवर बना सके। और बाकी बचे दो भागों से एक और कुशन कवर बन जाए। वह कपड़े को उन्हीं लाइनों पर काटना चाहती है, जो 25 छोटे चौकोर बनाती हैं और वह पैटर्न को भी बराबर-से बनाए रखना चाहती है। वह ऐसा कैसे कर सकती है?

9.

एक आदमी ने अपने 17 सुअरों के लिए एक चौकोर बाड़ा बनाया। उसने चौकोर की हर बाजू पर 27 खम्भे लगाए। तो बताओ उसने कुल कितने खम्भे इस्तेमाल किए?



10.

क्यों?

तुम्हें केवल माचिस व कागज़ का इस्तेमाल करके एक उबले हुए अण्डे को एक ऐसी बोतल के अन्दर डालना है जिसका मुँह अण्डे से थोड़ा-सा छोटा है। कैसे करोगे?

11.

क्या तुम बता सकते हो कि रसोई में इस्तेमाल की जाने वाली यह सब्ज़ियाँ पेड़ का कौन-सा भाग हैं?

लहसुन, कद्दू, टमाटर, मटर, आलू, मेथी, मिर्ची

12.

क्या तुम्हें इस चित्र में कोई गड़बड़ी लग रही है?



13.

एक महिला ने काउंटर पर एक किताब रखी। काउंटर पर बैठे व्यक्ति ने कहा, '30 रुपए!' उस महिला ने उतने रुपए उसे दिए और बिना किताब लिए चली गई। उस व्यक्ति ने उसे जाते हुए भी देखा लेकिन किताब लेने के लिए वापिस नहीं बुलाया।

14.

नीचे दिए गए वाक्यों में कुछ फलों के नाम छिपे हैं। ज़रा ढूँढकर बताओ।

पाँच दिनों से बशीर खेलने नहीं आया है।
जीप पीताम्बर चला रहा था।
पूजा मुनमुन को कम्प्युटर सिखा रही है।
कछुआ मनप्रीत को बहुत पसन्द है।
अली चीनी मिट्टी के बर्तन बनाता है।

15.

पहले बादलों का रंग सोचो, फिर बर्फ का रंग सोचो। फिर चमकते चाँद का रंग सोचो। अब बताओ गाय क्या पीती है?

16.

नीचे कुछ शब्द दिए गए हैं। तुम्हें इन सभी शब्दों के आगे दो अक्षर का एक ही शब्द लगाकर नए शब्द बनाना है।

.......पट

.......हद

.......गम

......दार

......कस

17.

एक घर में चार बहने हैं। सभी बहनों के एक-एक भाई है। बहनों के पापा अभी घर पे नहीं हैं, तो बताओ घर में कितने लोग हैं?

18.

कौन है जिसे डूबते देख कोई बचाने नहीं आता?

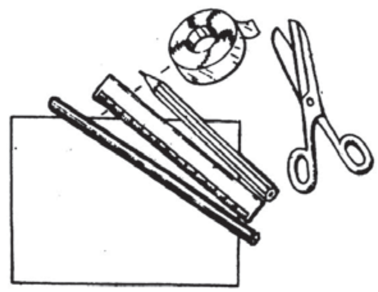
19.

ऐसी क्या चीज़ है जो खाने के काम भी आती है और पहनने के भी?

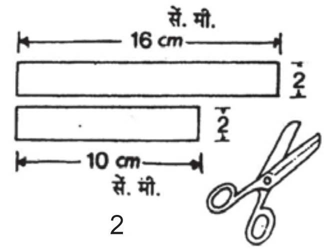
लूप ग्लाइडर



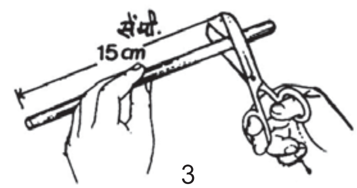




1



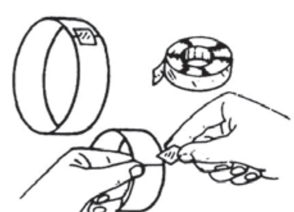
2



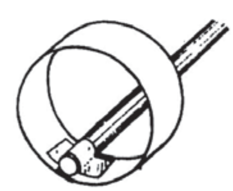
3

ग्लाइडर बिना इंजन का हवाईजहाज़ है। लूप ग्लाइडर बनाने के लिए एक मज़बूत कागज़, कैंची, स्केल, पेंसिल, प्लास्टिक की सोडा-स्ट्रॉ और चिपकाने के लिए कुछ गोंद और सेलो-टेप चाहिए होगा (चित्र 1)।

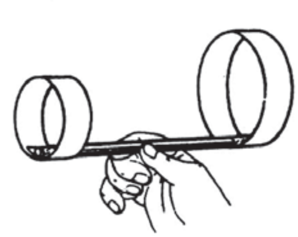
पहले कागज़ की दो पट्टियाँ काटो, जिनकी लम्बाई क्रमशः 16 व 10 सेंटीमीटर हो (चित्र 2)। सोडा-स्ट्रॉ का 15 सेंटीमीटर लम्बा एक टुकड़ा काटो (चित्र 3)। छोटी पट्टी के सिरों को आपस में जोड़कर एक छल्ला बनाओ। सिरों को गोंद से चिपका दो। इसी तरह बड़ी पट्टी का भी एक छल्ला बनाओ (चित्र 4)। अब सेलो-टेप से छोटे छल्ले को सोडा-स्ट्रॉ के एक सिरे पर चिपका दो (चित्र 5)। बड़े छल्ले को सोडा-स्ट्रॉ के दूसरे सिरे पर चिपका दो (चित्र 6)। इस बात का ज़रूर ध्यान रखना कि दोनों छल्ले एक ही सीध में हों।



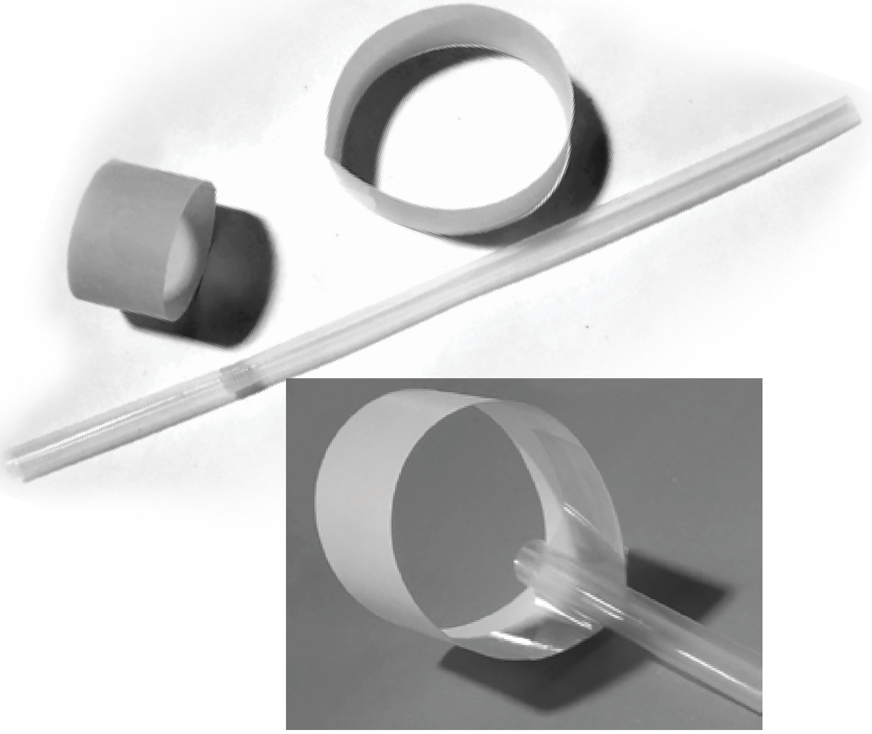
4



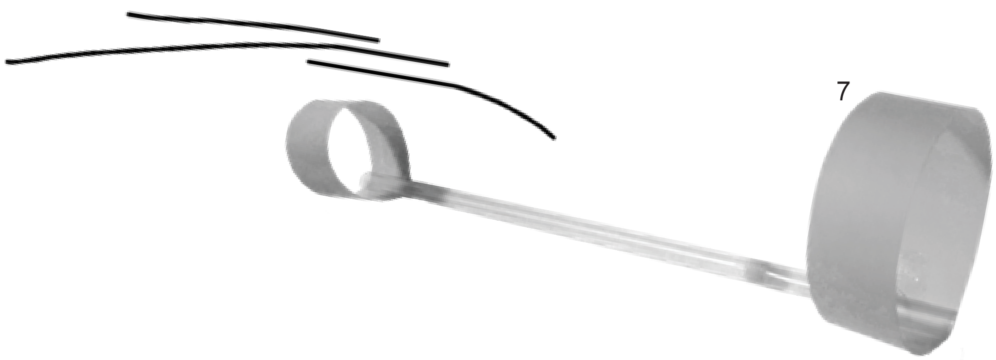
5



6



ग्लाइडर को उड़ाने के लिए उसका छोटा छल्ला आगे करके उसे हलके-से आगे की ओर फेंको (चित्र 7)। लूप ग्लाइडर हवा को चीरता हुआ आगे जाएगा और फिर हलके-हलके नीचे आएगा। अगर उड़ान के दौरान ग्लाइडर थोड़ा लड़खड़ाए तो दोनों छल्लों को सीधा करो। अच्छी उड़ान के लिए इसे बड़े कमरे में उड़ाओ, जहाँ हवा शान्त हो। ग्लाइडर फेंकते समय अगर बड़ा छल्ला आगे हो, तो क्या होगा? करके देखो।



7

9	5	8	1	2	6		4	
2	3	4		7		9		
7	1	6	9					
5	7	9	2		4			
	6	1	3					2
		3	6	1			5	7
		7	4	9	1		6	5
6	4			3			7	
		5	7	6	2	3	8	

सुडोकू-27

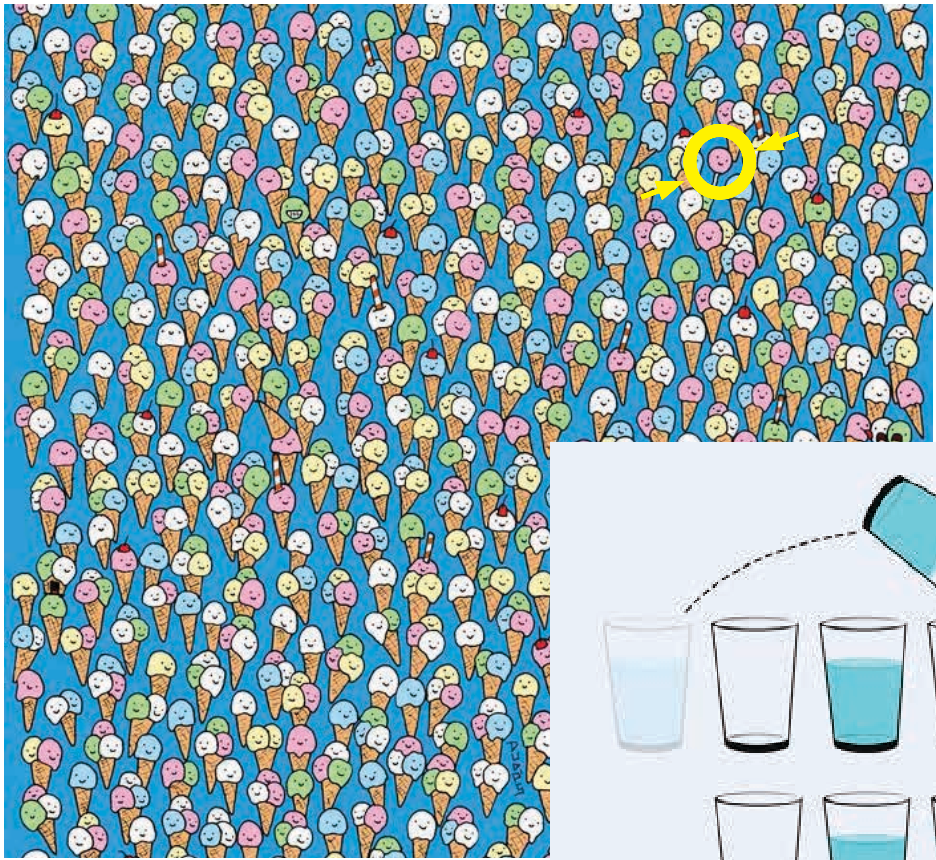
दिए हुए बॉक्स में 1 से 9 तक के अंक भरना। आसान लग रहा है न? पर ये अंक ऐसे ही नहीं भरने हैं। अंक भरते समय तुम्हें यह ध्यान रखना है कि 1 से 9 तक के अंक एक ही पंक्ति और स्तम्भ में दोहराए न जाएँ। साथ ही साथ, बॉक्स में तुमको नौ डब्बे दिख रहे होंगे। ध्यान रहे कि उन डब्बों में भी 1 से 9 तक के अंक दुबारा न आएँ। कठिन नहीं है, करके तो देखो। जवाब तुमको अगले अंक में मिल जाएगा।

माथापच्ची जवाब

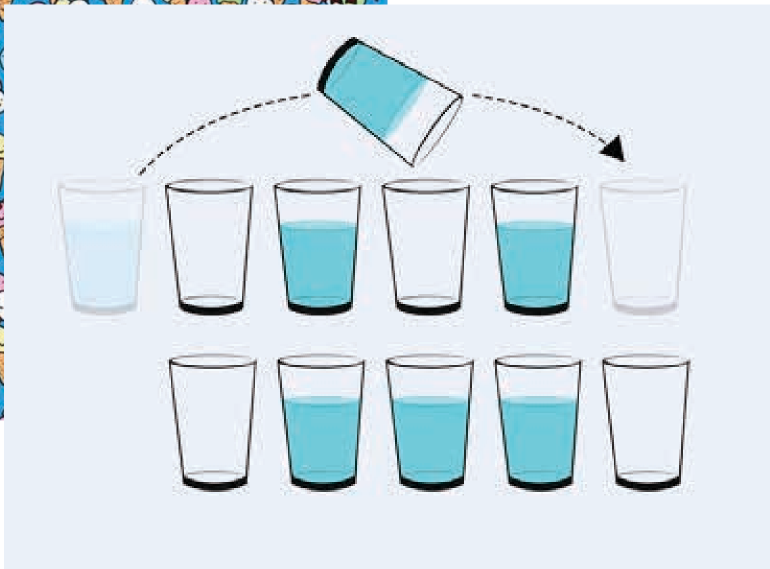
1. 33+3/3=34

2. नवासी

3.



4.



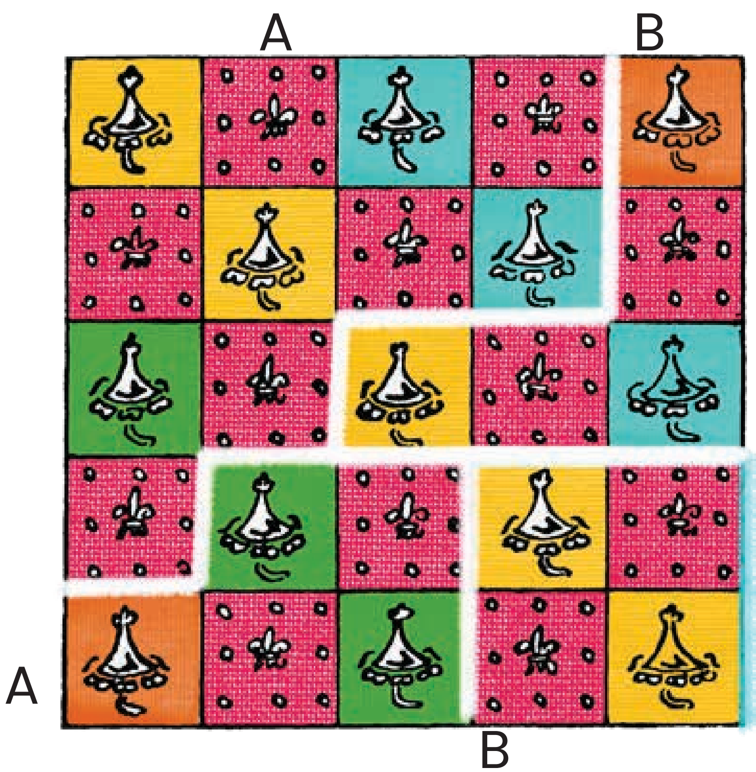
5.

मान लो कि बोतल का वज़न x और शहद का वज़न y है।
दोनों मिलाकर हुआ x + y = 1500 ग्राम ....(1)
जब आधी बोतल भरी थी तब उसका वज़न 900 ग्राम था,
मतलब x + y/2 = 900 ग्राम
इसे इस तरह भी लिख सकते हैं 2x + y = 1800...........(2)
अब समीकरण 2 में से 1 को घटा दें
2x + y = 1800
x + y = 1500
तो x = 300 हुआ।
यानी कि खाली बोतल का वज़न 300 ग्राम हुआ।

6.

गुरुवार, क्योंकि उस दिन ज़ोया सच बोलती है और अमन झूठ। तो ज़ोया सच बोलेगी क्योंकि अगले दिन शुक्रवार उसका झूठ बोलने का दिन है। अमन झूठ बोलेगा कि अगले दिन वह झूठ बोलेगा।

7. पलक



8.

A वाले दोनों टुकड़ों को आपस में जोड़कर पहला और B वाले दोनों टुकड़ों को आपस में जोड़कर दूसरा चौकोर कुशन कवर बन जाएगा।

9.

कोनों में लगे 4 खम्भे तो दोनों भुजाओं के लिए उभयनिष्ठ (कॉमन) होंगें और 25 खम्भे बाजुओं पर लगेंगे। तो कुल खम्भे होंगे,

25 x 4 + 4 = 104

10.

कागज़ को जलाकर बोतल के अन्दर डालो और जल्दी-से अण्डे को बोतल के मुँह के ऊपर रख दो। जलते हुए कागज़ को बोतल में डालने पर बोतल के अन्दर की हवा गर्म होकर फैलेगी। अण्डे को बोतल के मुँह पर रखने से आग बुझ जाएगी और कागज़ का जलना बन्द हो जाएगा। इससे अन्दर की हवा ठण्डी होकर सिकुड़ेगी। सिकुड़ने से बोतल के अन्दर हवा का दबाव बोतल के बाहर की हवा के दबाव से कम हो जाएगा और अण्डा बोतल में चला जाएगा।

11.

लहसुन - जड़
कद्दू - फल
टमाटर - फल
मटर - फल/बीज
आलू - जड़
मेथी - पत्ते
मिर्ची - फल/बीज

12.

ड्रैगनफ्लाई के चार पंख होते हैं। पर इसमें तो दो ही पंख दिख रहे हैं।

13.

क्योंकि वे दोनों लाइब्रेरी में थे और वह महिला फाइन भरकर जा रही थी।

14.

पाँच दिनों से बशीर खेलने नहीं आया है।
जीप पीताम्बर चला रहा था।
पूजा मुनमुन को कम्प्युटर सिखा रही है।
कछुआ मनप्रीत को बहुत पसन्द है।
अली चीनी मिट्टी के बर्तन बनाता है

15.

तुमने दूध सोचा होगा ना....

16.

सर
सर पट
सर हद
सर गम
सर दार
सर कस

17.

सवाल में लिखा ही है कि घर में चार बहने हैं।

18.

सूरज

19.

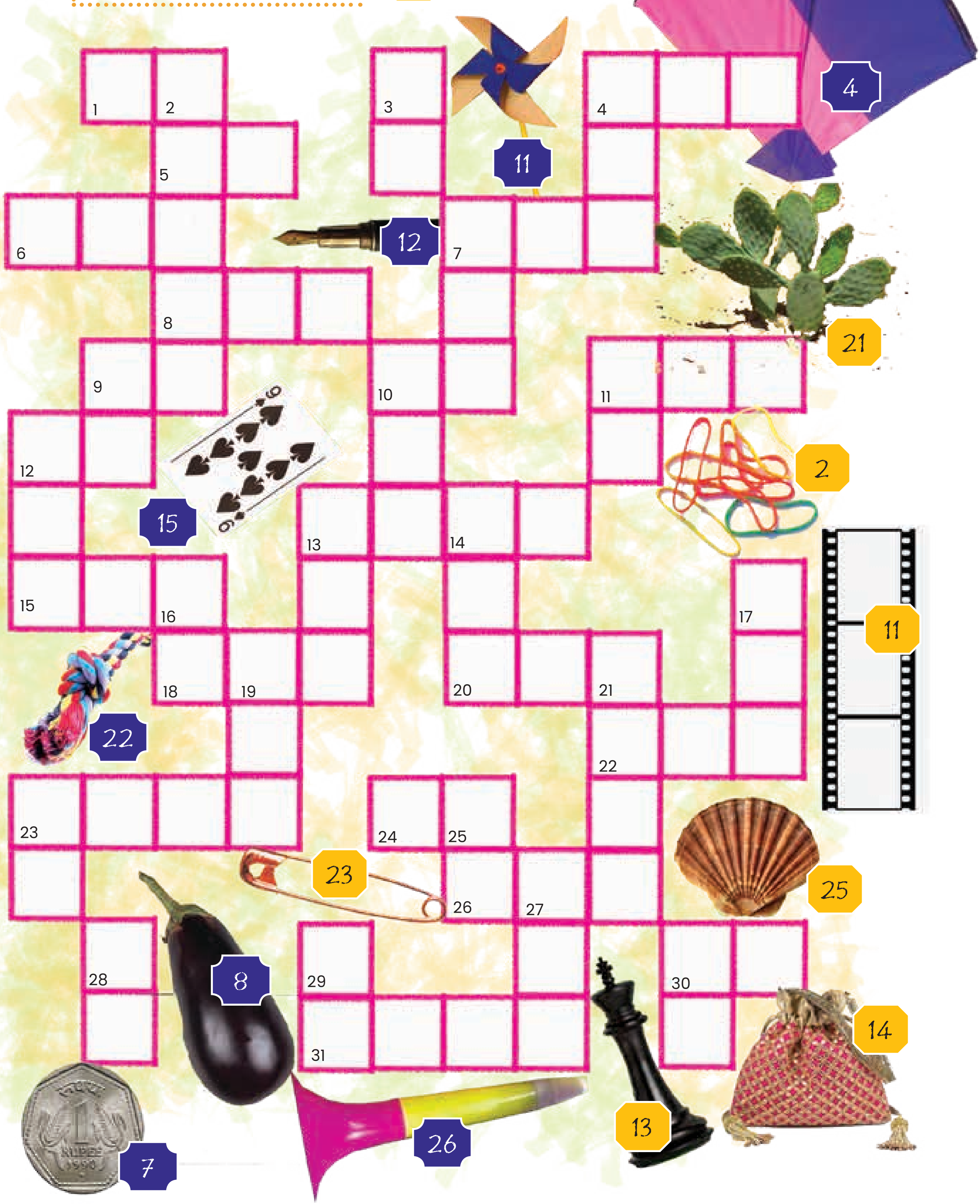
लौंग


1
5
9
10
30
6
31
20
24
28
30
4
9
3
17
18
10
12
27
19
16
7
23
29
13

चित्र पहेली

बाएँ से दाएँ

ऊपर से नीचे



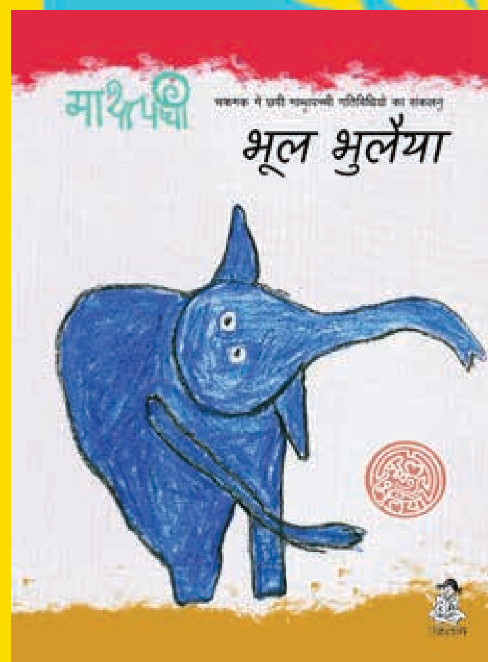
RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म. प्र./भोपाल/261/2018-20

मेरा पन्ना



400वें अंक के अवसर पर प्रस्तुत हैं *चकमक* के ख़ज़ाने में से तीन किताबें। 34 सालों से मेरा पन्ना में छपी सामग्री में से हमने दो किताबें बनाई हैं।

तीस की मुर्गी बीस में, जो मेरा पन्ना में प्रकाशित बच्चों की लिखी कहानियों-किस्सों का संकलन है और *मेरा खच्चर डण्डा है,* जो कविताओं का संकलन है। दोनों किताबों में हमने बच्चों के बनाए चित्र भी शामिल किए हैं।





तीसरी किताब है, *भूलभुलैया - चकमक* की माथापच्ची गतिविधियों का एक संकलन। पहेलियों की इस किताब की सज्जा भी हमने बच्चों के चित्रों से ही की है।

माथापच्ची

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी टैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म. प्र.
से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इण्डस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादक: विनता विश्वनाथन